खण्ड ५

एक बूंद : एक सागर

(आचार्य श्री तुलसी की वाणी/ग्रन्थों से चयनित)

संकलिका/संपादिका

समणी कुसुमप्रज्ञा

एक बूंद : एक सागर

प्रबोधाय विवेकाय हिताय प्रशमाय च ।
सम्यक्तत्त्वोपदेशाय सतां सूक्तिः प्रवर्त्तते ।।

नायं प्रयाति विकृतिं विरसो न यः स्यात्,
न क्षीयते बहुजनैर्नितरां निपीतः।
जाड्यं निहन्ति रुचिमेति करोति तृप्तिं,
नूनं सुभाषित रसोऽन्य रसातिशायी ॥

संपादिका
समणी कुसुमप्रज्ञा

जैन विश्व भारती प्रकाशन

सत्यम्

साहित्य का सजन एक बात है, उसका मंथन दूसरी बात है। सृजन की चेतना स्वतंत्र विहार करती है। मन्थन करने वाला सृजन में अवगाहन करता है। दूध में नवनीत होता है, पर आलोड़न-विलोड़न के बिना वह नहीं निकलता। साहित्य मे कुछ सारपूर्ण वाक्य होते हैं। उन्हें वही खोज सकता है, जो उसमें अवगाहन करता है। श्रम मंथन करने वाले का होता है, पर नवनीत का उपयोग दूसरे भी करते हैं। इसी प्रकार साहित्य में अवगाहन कर वर्गीकृत विषयों का संकलन करने से साहित्य की एक नई विधा सामने आ जाती है, जो बहुत लोगों के लिए पठनीय बन सकती है।

समणी कुसुमप्रज्ञा ने 'एक बूंद : एक सागर' में मेरे गद्य-पद्य साहित्य का मन्थन कर चयनित विषयों को अकारादि क्रम से व्यवस्थित किया है। मेरे साहित्य में विषयों की इतनी विविधता को देखकर मैं स्वयं विस्मित रह गया। संक्षिप्तरुचि एवं शोधरुचि वाले लोगों के लिए ऐसी सामग्री सहज उपयोगी हो जाती है।

जैन-परम्परा के इतिहास में साध्वियों की सृजन-यात्रा नही के बराबर रही है। इधर के कुछ वर्षों में हमारी साध्वियों और समणियों ने अपनी साहित्यिक रुचि और प्रतिभा का उपयोग करना शुरू किया है। मै चाहता हूं कि इस दिशा में उनकी गति मे त्वरा आए। इससे उनकी क्षमताओं का विकास तो होगा ही, धर्मसंघ की गरिमा भी बढ़ेगी।

'एक बूंद : एक सागर' पुस्तक के सम्पादन मे समणी कुसुमप्रज्ञा ने बहुत श्रम किया है, पर यह जनता के लिए उपयोगी हो गया है। इस यात्रा में उसे जिनका सहयोग, प्रोत्साहन और प्रेरणा मिली, वे सब उत्तरोत्तर गति करते रहे, यही मंगल भावना है।

आचार्य तुलसी

शिवम्

ज्ञान अनंत है पर अभिव्यक्ति सांत है। जितना जाना जाता है, उतना कहा नहीं जाता। जितना कहा जाता है, उतना ग्रहण नही किया जाता। आचार्यश्री तुलसी ने जो कहा, उसे ग्रहण करने के लिए उनके परिपार्श्व में जाना होता है। दूर खड़ा रहने वाला शब्दों को पकड़ सकता है, अर्थात्मा को नही पकड़ सकता। आचार्यश्री ने इन ५५ वर्षों में लगभग २५ हजार वार से अधिक प्रवचन किए है। हजारों वार वार्तालाप किया, शिक्षाएं दीं और संदेश दिए। उन सवका यदि संकलन होता तो अभिव्यक्ति की राशि भी विशाल हो जाती। संकलन २५ प्रतिशत का भी नही हुआ है। फिर भी जो हुआ है, वह कम विशाल नहीं है। उस विशाल राशि से कुछ बूंदें प्रस्तुत हैं, ठीक वैसे ही जैसे सागर को गागर में भरने का प्रयत्न।

प्रत्येक बूंद का अपना महत्त्व है और इसीलिए कि वह अनुभूति के महासागर की बूद है। वाणी का महत्त्व है पर वाणी केवल वाणी ही होती है। उसका मूल स्रोत अनुभव नहीं होता है तो उसका महत्त्व सामयिक, अल्पकालीन और अल्पमूल्य वाला होता है। अनुभव से उद्भूत वाणी त्रैकालिक और शाश्वत मूल्य वाली वन जाती है। आचार्यश्री की वाणी केवल वाणी ही नही है, वह शाश्वत का महास्वर है। उस स्वर ने हजारों-हजारों को प्रेरणा दी है, जागरण का संदेश दिया है और दी है स्वतंत्र चेतना की अनुभूति। उस वाणी से संकलित कुछ बूंदे वहुत उपयोगी होंगी जनता के लिए।

समणी कुसुमप्रज्ञा ने उन बंदों को एकत्र कर एक प्रवाह वनाने मे जो श्रम किया है, वह सफल होगा, पाठक को कृतार्थता की अनुभूति होगी और उसे मिलेगा परम आनंद।

(युवाचार्य)

सुन्दरम्

महान् पुरुषों का एक-एक वचन प्रेरक होता है, उद्बोधक होता है, आह्लादक होता है। उनका एक भी वचन अन्तःकरण को छू जाए तो जीवनधारा बदल जाती है। उनके वचनों में मन्त्र जैसी शक्ति होती है जो निराशा, अवसाद, अनुत्साह जैसे यक्षों को भी कीलित कर देती है।

युगप्रधान, अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी धर्म और दर्शन के महान् प्रवक्ता हैं। आपके प्रवचनों में एक ओर दर्शन की गंभीरता है तो दूसरी ओर व्यवहार जगत् की समस्याओं के समाधान भी हैं। उस गंभीरता को समझा जाए और समाधान की रोशनी में जीवन का पथ प्रशस्त किया जाए।

समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने आचार्यश्री के साहित्य का अवगाहन कर उसमें सन्निहित अनमोल रत्नों को चुनने का एक सार्थक प्रयास किया है। उनकी स्वाध्यायशीलता, गहरे अध्यवसाय और दृढ़ संकल्प की निष्पत्ति है—एक बूंद : एक सागर।

यह संकलन पाठकों के जीवन की धरती पर अध्यात्म की पौध उगाने में निमित्त बनेगा और इसके द्वारा उन्हें नई दिशाएं उपलब्ध हो सकेंगी, ऐसा विश्वास है।

कनकप्रभा

(साध्वी प्रमुखा)

प्रकाशकीय

लगभग ४५ वर्ष पूर्व का प्रसङ्ग है। श्रद्धास्पद आचार्य श्री तुलसी सुजानगढ़ में प्रवास कर रहे थे। मैं प्रातःकालीन प्रवचन सुना करता। हर्ष विभोर हो उठता। वचन अमृत की घूंट से लगते। मौलिक चिन्तन, अनुभून प्रेरणा और गंभीर आध्यात्मिक चेतना से परिप्लुत वाणी अत्यन्त सरस लगती। उस समय की दुरूह धारण-प्रणाली के अनुसार यह संभव नहीं था कि कोई प्रवचन-स्थल पर उसी समय उसे लिख सके। एक दिन प्रवचन सुनकर घर पहुंचते ही मैंने प्रवचन को स्मृति के आधार पर लिख डाला। आचार्य श्री के दर्शन कर निवेदन किया—घर पर जाकर आपके आज के प्रवचन को मैंने लिखा है, वह इस प्रकार है। आचार्य श्री पढ़कर मुस्कराने लगे। बोले—प्रायः हूबहू है। मैंने निवेदन किया—ऐसी वाणी के संग्रह का प्रबन्ध न होने से मानवमात्र के लिए अमूल्य धरोहर बिखरी जा रही है।

सन् १९६० में मैंने आचार्यश्री के प्रवचनों के तीन ग्रंथ 'प्रवचन डायरी' शीर्षक से संपादित कर जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा कलकत्ता की ओर से प्रकाशित किये। डायरियां रसपूर्ण गर्म इमरतियों की तरह स्वागतार्ह हुईं।

सन् १९६६ में मैंने १९६५ के प्रवचनों के आधार पर चुने हुए विचारों का संग्रह संपादित कर 'जीवन-सूत्र'—शीर्षक से छपाना आरंभ किया। कुछ कारणों से वह रुक गया। नीचे मैं उसके दो पृष्ठ उद्धत कर रहा हूं:—

- भोजन केवल शरीर को टिकाए रखने के लिए किया जाता है, स्वाद के लिए नहीं। वह न अधिक रूक्ष हो और न अति स्निग्ध। अति रूक्ष भोजन से क्रोध, चिड़चिड़ापन आदि की वृद्धि होती है और अति स्निग्ध भोजन से उत्तेजना बढ़ती है। (प्र० १-१-६५)
- अपनी भूख से आधा खाया जाए तो वह भोजन लाभप्रद हो सकता है। (प्र० १-१-६५)

- क्रोध या आवेग की अवस्था में भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसी अवस्था में किया हुआ भोजन विषवत् परिणत होता है। (प्र० १-१-६५)
- जो भोज्य पदार्थ स्वादिष्ट, मधुर और स्वच्छ होते हुए भी आवश्यक न हो, तो अपथ्य है। जो आवश्यक हो, वह पथ्य है। (प्र० १-१-६५)
- साधु-सन्तों का पुनः-पुनः आगमन जनता के उत्कर्ष के लिए होता है। जिस सात्त्विक वातावरण को फैलाने में वर्षो लग जाते है, वह सन्तों के स्वल्पकालीन प्रवास में सहज सम्पादित हो जाता है। (प्र० २८-२-६५)
- पैसा साध्य नहीं, साधन है। रोगी रोग-मुक्ति के लिए औषध खाता है, पर वह भोजन की तरह जीवन-भर खुराक नहीं खाता। वैसे ही धन आवश्यक वस्तुओं के विनिमय का साधन मात्र है। (प्र० १-३-६५)
- भावी आशाओं का केन्द्र विद्यार्थी ही है। बुद्ध और महावीर इन बच्चों में ही थे। कौन जानता है कि कौन-सा बीज किस विराटता को धारण किये हुए है ? (प्र० २-३-६५)
- चरित्र के अभाव में कोई भी देश अपने को सबल बना सके, यह असम्भव है। (प्र० ३-३-६५)

प्रस्तुत ग्रन्थ 'एक बूंद : एक सागर' आचार्य तुलसी के वचनों का अनोखा संग्रह है, जो पाच खण्डों में प्रकाशित हो रहा है। समणी कुसुमप्रज्ञाजी के अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम ने इसे साकार रूप दिया है। यह कृति न केवल आचार्यश्री के प्रवचन, ग्रंथ, लेख और समाचार पत्रों में प्रकाशित रिपोर्टों के आधार पर संगृहीत है, पर इसमें कुछ उदान भी है।

संकलन अकारादि क्रम से निर्धारित विषयों पर है और एक विषय पर कही एक, कहों दो तो कहीं अनेकों वचनों का चयन है। कुल मिलाकर पांच खण्डों में चार हजार से अधिक विषय और लगभग इक्कीस हजार अमूल्य वचनों का संग्रह है। वचन शीर्षक संगत तो है ही, पर साथ ही साथ वे इतने अर्थ-गौरव और चिन्तन-संदर्भ को लिए हुए हैं कि अधिकांशतः एक ही वचन दूसरे अनेक विषयों की सुन्दर, मार्मिक सूक्तियां उपस्थित करता है। उदाहरण

स्वरूप पांचों खण्डों की कतिपय सूक्तियां द्रष्टव्य हैं :—

खण्ड १

- आकृति को नही, अन्तःकरण को देखो; तभी जीवन का विकास संभव है।
- सारी अंधरूढ़ियों का मूल शिक्षा की कमी ही है।
- विद्यार्थी यह नहीं देखते कि अध्यापक क्या कहते हैं ? वे यह देखते हैं कि ये क्या करते है ?
- मौत नहीं होती तो अहंकार का साम्राज्य छा जाता।
- प्रत्येक असंयमी व्यक्ति अणुबम की विस्फोट भूमि है।

खण्ड २

- अटकाव और भटकाव को गति में बदलना—यही जीवन :
- बाद का पश्चात्ताप यदि पहले का विवेक बन जाए तो दुर्घटना टल जाती है।
- दृढ़ संकल्प वह बारूद है, जिसके विस्फोट से बड़ी से बड़ी बाधक चट्टान भी चूर-चूर हो जाती है।
- पुरुषार्थ की लौ असहिष्णुता के झोंकों से आहत होकर बुझ जाती है।
- कन्याओं का भविष्य शादी नहीं, शिक्षा है।

खण्ड ३

- पुरुष हृदय पाषाण भले ही हो सकता है।
  नारी हृदय न कोमलता को खो सकता है।
  पिघल-पिघल अपने अन्तर को धो सकता है।
  रो सकता है, किन्तु नही वह सो सकता है॥
- सिर्फ अपनी बुद्धि को ही महत्त्व देने से व्यक्ति नास्तिक बनता है।
- तकलीफो को हंसते-हंसते सहते जाओ, जीवन मे निखार आ जाएगा।
- माता के मन की ममता की थाह पाना उतना ही कठिन है, जितना कि सागर की थाह पाना।
- प्रगति किसी की प्रतीक्षा नही करती।
- निर्माण उसी का होता है, जो चोट सहन करता है।

खण्ड ४

- अविश्वास की चिनगारी सुलगते ही सत्ता से गरिमा के साथ अलग हट जाना लोकतंत्र का आदर्श है।
- विकास के लिए बदलाव और ठहराव दोनों जरूरी हैं।
- विद्यार्थी बने रहने मे जो आनन्द है, वह आचार्य बनने मे नहीं।
- नमक बिना सब भोज्य अलोने।
  विनय बिना सारे गुण बौने॥
- वह हर प्राणी शस्त्र है, जो दूसरे के अस्तित्व पर प्रहार करता है।

खण्ड ५

- जो व्यक्ति हर पल दुःख का रोना रोता है, उसके द्वार पर खडा सुख बाहर से ही लौट जाता है।
- साम्प्रदायिक उन्माद इंसान को भी शैतान बना देता है।
- साहित्य ने जनमानस को जितना आन्दोलित किया है, उतना कोई भी जादू नहीं कर पाया।
- सुविधावाद एक प्रकार का नशा है जो प्रारम्भ में तो आनंद-दायक प्रतीत होता है, पर इसके परिणाम अच्छे नहीं निकलते।
- केवल स्वार्थ की पूजा करने वाले लोग अपना भाग्य परतंत्रता के हाथों सौप देते है।

पांचों खण्डों में ऐसी हजारों सूक्तियां हैं, जिनमें उद्घाटित सत्य, मानव-मात्र के लिये जीवन-सूत्र के रूप में पथ-प्रदर्शक सिद्ध हो सकता है।

सूक्ति-ग्रंथ अनेक हैं और विश्व की सभी भाषाओं में हैं, पर एक ही महापुरुष के लगभग इक्कीस हजार वचन, जो 'एक बूंद : एक सागर' की उपमा को चरितार्थ कर सकें, का संग्रह यह पहला ही है। कहा जा सकता है कि महात्मा गांधी के बाद दूसरे महापुरुष तुलसी ही है, जिन्होंने एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य होते हुए भी संघ की परिधि से बाहर विश्व-मानव की मानवता को साकार किया है और विश्व बन्धुत्व की ओर उसे प्रेरित किया है।

एक ही व्यक्ति के विविध चिन्तनपरक वचनों का यह अनूठा और अद्वितीय संग्रह साहित्य-जगत् के लिए भी अभूतपूर्व उपलब्धि है, इसमें संदेह नहीं।

सूक्ति-संग्रहों में प्रायः अनेक मनीषियों के मार्मिक कथनों का संग्रह रहता है। हिन्दी भाषा में प्रकाशित संग्रह प्रायः इसी प्रकार के है। यह संग्रह उनसे भिन्न और विशिष्ट बन पड़ा है, ऐसा हमारा विश्वास है, परन्तु निर्णय तो पाठक ही कर पायेंगे।

यह हमारे लिए बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमे प्रत्येक खंड के लिए एक मूर्धन्य विद्वान् और समालोचक साहित्यकार का निष्पक्ष मूल्यांकन उपलब्ध हो पाया है, जो यथास्थान प्रकाशित है। आचार्यश्री द्वारा संस्थापित समणी वर्ग की अनेक-विध सेवाओं में उनकी साहित्यिक सेवाएं भी बहुमूल्य है। समणी कुसुमप्रज्ञा जी ने सम्पादक एवं सह-सम्पादक के रूप में 'एकार्थक कोश' एवं 'देशी शब्द कोश' जैसे बहुश्रुत विद्वानों द्वारा प्रशंसित कृतियों के बाद "एक बूद : एक सागर" जैसी अनुपम कृति को उपस्थित कर लोक-कल्याण की भावना को साकार किया है।

ग्रंथ अपनी यात्रा में अनेकों विद्वानों के हाथों से गुजरा है, जिनके सुझाव बहुत उपयोगी रहे है। सभी सहयोगी विद्वानों के प्रति हम हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

—श्रीचंद रामपुरिया

विचार-मंथन का नवनीत

'हिन्दी साहित्य-कोश' मे 'सूक्ति' को जीवन के अनुभवों, अनुभूतियों का सार-संक्षेप, चेतावनी कहा गया है। इसका उद्देश्य मनोरंजन न होकर इहलौकिक और पारलौकिक जीवन का परिमार्जन तथा परिशोधन करना है। यहां मानव-प्रकृति के सामाजिक एवं आध्यात्मिक सम्बन्धो का सुंदर ताना-बाना बुना जाता है। जीवन-सम्बन्धों के जो विशेष कोण सामने आते है, वह निष्कर्षात्मक रूप में सूक्ति का चोला धारण कर लेते है। 'सूक्ति' का शाब्दिक अर्थ है—सु+उक्ति=सुंदर उक्ति या कथन। सूक्ति को 'सुभाषित' भी कहा जाता है। सुभाषित से भी सुन्दर कथन का अर्थ व्यंजित होता है। सुन्दर नैतिकतापूर्ण सूक्तियां मनुष्य की रहनुमाई करती आई है। सर्वप्रथम वेदों से सूक्तियां संकलित की गई। संस्कृत साहित्य में चाणक्य, भोजराज, कालिदास, भर्तृहरि आदि की सूक्तियां जन-मानस को सदैव आकृष्ट एवं प्रभावित करती रही है। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य से भी सूक्तियां संगृहीत की गई है। हिन्दी में कबीर, तुलसी, रहीम, बिहारी आदि की सूक्तियां अत्यधिक प्रसिद्ध, लोकप्रिय, तत्त्वात्मक और नीतिपरक है। वर्तमान साहित्यकारों मे प्रसाद, पंत, दिनकर, रामचन्द्र शुक्ल आदि के साहित्य मे सूक्तियों का प्राचुर्य है। गांधीजी, नेहरूजी प्रभृति शीर्षस्थ देश के कर्णधारो का कथन सूक्तियों के रूप में उद्घृत किया जाता है। धर्मगुरुओं के प्रवचनों तथा उनकी वाणी के सार तत्व को सूक्ति माना जाता है। अंग्रेजी में शेक्सपियर, मिल्टन, शैले, बायरन, कीट्स, वर्ड्स्वर्थ, इमर्सन, ईलियट, टोयनवी आदि के साहित्य से सूक्तियों का चयन किया गया है। उर्दू में गालिब, इकबाल आदि के अश आर सूक्ति के रूप में जनमानस में छाए है। सूक्तियों में जीवन के अनुभवों का साक्षात्कार सन्निहित होता है।

अणुव्रत-शास्ता, स्रष्टा, प्राचेतस, मंत्रदाता, तेरापंथ धर्मसंघ के नवे उत्तराधिकारी आचार्यश्री तुलसी का व्यक्तित्व अत्यधिक तेजस्वी

एवं वर्चस्वी है। ऋषि व्यक्तित्व के धनी आचार्यश्री ने एक लाख किलोमीटर की पद-यात्राएं करके, देश के कोने-कोने में जाकर जन-जीवन को प्रभावित एवं संप्रेरित किया है। असंख्य लोगों को अणुव्रती तथा व्यसन-मुक्त बनाया है, उन्हें प्रबोधित किया है। आत्मविश्वास, पौरुष, पराक्रम, करुणा, कष्ट-सहिष्णुता ध्यान-ज्ञान आदि अर्हताओं की रश्मियां उनके जीवन-अनुभवों, प्रसंगों, संदर्भों से विकीर्ण होकर सभी को आलोक प्रदान करती आ रही है। उनके ज्ञान की ज्योति प्रवचनों में छिपी है, जो साम्प्रदायिकता, विषमता, भेदभाव के अन्धकार को सहज नष्ट कर देती है। अत. उनका प्रवचन-पीयूप सभी का कल्याण करने वाला है, नया जीवन देने वाला है, अहिंसात्मक समाज की संरचना करने वाला है। अब तक उनकी दर्जनों पुस्तकें छप चुकी है। उनका यात्रा-साहित्य विलक्षण है, जिसमें भारत की संस्कृति, धर्म, दर्शन, साहित्य, लोकजीवन, भूगोल, इतिहास सभी का युगपत् संदर्शन होता है। उनके विशाल साहित्य का अभिमंथन कर, उसमें गहरे पैठकर सूक्तियों के मोती खोजने का दुस्साध्य काम अभी तक नही हो सका था। अब उसे संपूर्ण किया गया है—कुशलता एवं दक्षता से सम्पन्न किया गया है और संकलन-कर्त्री है समणी कुसुमप्रज्ञाजी। ये सूक्तियां हिन्दी, संस्कृत तथा राजस्थानी भाषा मे विरचित है। आचार्य तुलसी के सकल साहित्य को खंगाल कर समणी कुसुमप्रज्ञाजी ने हजारों विषयों में विभक्त कर हजारों सूक्तियों को पांच खण्डों मे "एक बूंद : एक सागर" नाम से संकलित किया है। आर्षदृष्टि सम्पन्न आचार्य श्री तुलसी की सूक्तियो में अतीत का समाकलन, वर्तमान का गहन अनुभव तथा भविष्य का प्राक्कलन मौजूद है। उनकी सूक्तियो मे जीवनानुभूतियों की जो छवि उरेही गई है, वह उनके सारस्वत व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करती है। ये सूक्तियां आर्षवाक्य है। ये सूक्तियां ऐसे सुरभित सुमन हैं कि जो चाहे इनसे अपना दामन भर सकता है; जीवन को ज्ञान-अध्यात्म की सुगंध से सुगंधित बना सकता है—

> फूल खिले हैं गुलशन-गुलशन,
> लेकिन अपना-अपना दामन।
>
> —जिगर मुरादाबादी

ये सूक्तियां आचार्यश्री के जीवन का निचोड हैं। इनमे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, लोकतन्त्र, राजनीति, साम्प्रदायिक सद्भाव,

मानवीय-एकता, राष्ट्रीय भावना, संयम, समता, आचारशास्त्र आदि की तथा जीवन-मूल्यो की प्रेरणादायक अभिव्यक्ति है। निःसंदेह आचार्यश्री का यह बृहदाकार सूक्ति-संग्रह साहित्य तथा चितन का नवनीत कहा जा सकता है। लगता है उन्होंने "गागर में सागर" भर दिया है।

महार्ह आचार्य श्री तुलसी का व्यक्तित्व पौरुष तथा ज्ञान-विज्ञान की, अध्यात्म की ऊर्जा से ऊर्जस्वित है। समाज की, देश की, विदेश की सभी प्रकार की समस्याओं से वे अवगत रहते है, साथ ही उनके सम्यक् समाधान में सक्रिय भूमिका भी अदा करते है, ऐसा उनकी सूक्तियों से सुध्वनित है—

१. जीवन की सुई को आगम के धागे से संपृक्त रखने वाला व्यक्ति ससार में नही भटक सकता।
२. जिसे शिष्यत्व की अनुभूति नही, उसे शास्ता बनने का अधिकार भी नही है।
३. अध्यात्म राष्ट्र की सबसे ऊंची सम्पत्ति है।
४. मनुष्य की पहली और अतिम अभीप्सा है—शान्ति।
५. घृणाभाव ही अस्पृश्य है।

इन सूक्तियो में कोई साम्प्रदायिक या धार्मिक आग्रह नही हैं। ये जीवन के गहरे अनुभवो से प्रसूत हैं। सूक्तियो की भाषा शुद्ध, प्रांजल और परिष्कृत है, सस्कृत है। संस्कृत भाषा पर भी आचार्य श्री का अद्भुत अधिकार है। संस्कृत तथा राजस्थानी भाषा मे रची सूक्तियां काफी रोचक तथा प्रभविष्णु है। मानस-मंथन से उद्भूत ये सूक्तियां नेत्रोन्मीलक, विचारवर्द्धक है। उनकी शैली प्रसाद गुण सम्पन्न तथा अलकृत है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, दृष्टान्त आदि अलंकारों की छटा यत्र-तत्र देखी जा सकती है। कुछेक भावो/शब्दों को नूतन भाव-भंगिमा के साथ परिभाषित किया है, जैसे—

सत्-चित् और आनन्द की अनुभूति ही अहिंसा है।

अनेकान्त दो सच्चाइयों के बीच का सेतु है।

मनुष्य के अन्तर्बाह्य को ज्ञानाभा से आभान्वित करनेवाला यह विशाल सूक्ति-संग्रह आचार्यश्री का अभिनव साहित्यिक अवदान है। यह हिन्दी सूक्ति-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगा और जन-मानस में लोकप्रियता प्राप्त करेगा, ऐसा विश्वास है।

—डा० निजामउद्दीन

स्वकीयम्

साहित्य की अनेकानेक विधाओं में सूक्तिविधा अपनी सूक्ष्मता, भावप्रवणता, प्रभावोत्पादकता और सहजग्राहिता के लिए इतिहास प्रसिद्ध है। "देखन में छोटन लगें, घाव करें गम्भीर"—की कहावत को शत-प्रतिशत चरितार्थ करने वाली यह विधा अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक उपयोगी दृष्टिगोचर होती है। यदि साहित्य में सूक्ति विधा न हो तो उसमें रस और सौन्दर्य की कोई स्थिति नहीं रह सकती। वेदों, उपनिषदों, विविध-आगमों, दर्शनग्रंथों तथा संस्कृत साहित्य से यात्रायित यह विधा आधुनिक साहित्य मनीषियों के मस्तिष्कीय तूणीरों से निर्गत दिव्यास्त्रों की भांति जनकल्याण का अनुपमेय साधन बन रही है। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि व्यावसायिक लाभ दिलाने की अक्षमता ने इस विधा के स्वतंत्र लेखन पर कुठाराघात किया है, जिससे साहित्य जगत् में यह एक समृद्ध विधा के रूप में उभर नहीं सकी। इस विधा को अपनाए विना किसी भी कवि, साहित्यकार और लेखक की साहित्य-यात्रा की पूर्णाहुति नहीं हो सकती, फिर भी इसे एक स्वतंत्र विधा का रूप नहीं मिल सका, इससे बढ़कर चिन्तनीय स्थिति और क्या हो सकती है ?

प्राचीन ग्रंथों में ऐसी अनेक पौराणिक घटनाएं पढ़ने को मिलती हैं कि एक सूक्ति से बड़े से बड़ा अनर्थ और दुर्घटना रुक गई तथा व्यक्ति का आमूलचूल परिवर्तन हो गया। इतना ही नहीं, एक-एक सूक्ति को सवा-सवा लाख मुद्राओं में बेचने का उल्लेख भी ग्रन्थों में मिलता है। अतः सूक्तियों के सार्वकालिक और सार्वजनीन महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। यदि यह कहा जाए तो अनुपयुक्त नहीं होगा कि सत्यं, शिवं, सुन्दरं का वास्तविक समन्वय सूक्तियों के माध्यम से ही सम्भव है।

कभी-कभी किसी ग्रंथ के सैकड़ों पृष्ठ या कुशल वक्ता का घंटों का व्याख्यान भी इतना प्रभाव नहीं डाल सकता जितना गहरा प्रभाव जीवन में एक सूक्ति का पड़ सकता है। डॉ० श्यामबहादुर वर्मा के अनुसार "सूक्तियां ज्ञान के केप्सूल जैसी, प्रेरणा के इंजेक्शन जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक साक्षात्कार जैसी होती हैं।"

अनुभव और प्रज्ञा की कसौटी पर तपे-तपाए व्यक्तित्व के मुख से निकली हुई जो वाणी मानव के हृदय-परिवर्तन का मुख्य हेतु बनती है, वह सहज रूप में प्रतिष्ठित हो जाती है। धर्म और दर्शन का अवलम्बन पाकर तो वह अपने अस्तित्व को और अधिक सार्थकता प्रदान कर सकती है।

आचार्य श्री तुलसी महान् साहित्यकार है। साहित्य की गुरुता को समझते हुए उन्होंने अपने साहित्य मे शिव के साथ सत्य और सौन्दर्य का सामंजस्य किया है। उनकी लेखनी और वाणी किसी एक विषय पर न रुक कर विविधता लिए हुए है तथा एक विषय को भी अनेक दृष्टियों से व्याख्यायित करने की अद्भुत क्षमता उन्हें प्राप्त है। उनके साहित्य मे उन सब वातों का जीवन्त विवरण है, जिन्हे हम देखते है, अनुभव करते है, सोचते है और समझते है। उनके साहित्य में वह आत्मा छिपी हुई है जो समस्त भारतीयता की प्रतीक है। आचार्यश्री ने अपने अनुभव, प्रवचन और लेखन से साहित्य की लगभग सभी विधाओं का स्पर्श किया है, उन्हें परिपुष्ट किया है। निस्सदेह सत्यता, प्रसन्नता और शांति की त्रिधारा में अवगाहन करते आचार्य श्री तुलसी का साहित्यिक रूप हमारे समक्ष आत्मा की वाणी के रूप में प्रस्फुटित होता है।

यद्यपि आचार्य तुलसी ने सूक्तियो का स्वतंत्र लेखन बहुत कम किया है किन्तु महापुरुषों के तप:पूत जीवन से नि:सृत प्रत्येक वाक्य दिशा-निर्देशक और प्रेरक होता है। इसलिए आचार्यश्री की स्वाभाविक एव सहज अभिव्यक्ति में अनेक वाक्यों ने सूक्तियो और सुभापितों का स्थान ले लिया है।

संकलन की प्रेरणा और प्रक्रिया

वाल्यकाल से ही स्वाध्याय मेरी अभिरुचि का विषय रहा है। जब मैंने आचार्यश्री के साहित्य में अवगाहन किया तो महसूस हुआ कि सहज, सरल भापा में निबद्ध यह साहित्य व्यक्ति की सुप्त चेतना को झंकृत करने में समर्थ है तथा मानव-कल्याण की भावना उसके पृष्ठ-पृष्ठ पर अंकित है। उनका साहित्य वर्तमान जीवन के 'तुमुल' 'कोलाहल' और 'कलह' से आक्रान्त और आच्छन्न नहीं, प्रत्युत विराट् जीवन को सर्वोपरि मानते हुए हमें आदर्श जीवन-मूल्यों की ओर प्रवृत्त करता है। अतः उनकी साहित्य-स्रोतस्विनी में

उन्मज्जन-निमज्जन करते हुए मेरे मन में एक संकल्प उठा कि जिन प्रभावोत्पादक वाक्यों ने मेरे जीवन में बदलाव लाने में अहम भूमिका निभाई है, उनका जनमानस के कल्याणार्थ एकत्रीकरण आवश्यक है। मैंने संकलन करने का प्रयास किया और उसका एक ग्रंथ के रूप में प्रणयन हो गया—यह आचार्यश्री की कृपा का ही प्रसाद है।

इस ग्रंथ का सम्पादन इतना सरल नही था, क्योंकि एक ओर आचार्य श्री तुलसी का विशाल साहित्य था तो दूसरी ओर उनकी आध्यात्मिक उत्तुंगता थी। एक ही व्यक्ति के विचारों का संकलन होने से इस ग्रंथ के सम्पादन का सबसे अधिक श्रमसाध्य कार्य था—एक ही भाव की अनेक सूक्तियों में से एक का चयन। दूसरी कठिनाई यह थी कि आचार्यश्री का एक ही लेख अनेक स्थलों पर प्रकाशित होने से एक ही उक्ति के अनेक कार्ड बन गये। उन कार्डों पर शीर्षकों का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न समय मे हुआ। अतः अनेक स्थलों पर दो विषयों पर प्रकाश डालने वाले एक ही वाक्य पर दो भिन्न-भिन्न शीर्षक लग गए। उन सबका पृथक्करण श्रमसाध्य और स्मृतिसाध्य कार्य था। इसके लिए बार-बार कार्डो का निरीक्षण करना पड़ा।

यद्यपि पुनरुक्ति दोष से बचने का हर संभव प्रयास किया गया है, फिर भी यह संकलन एक धर्मनेता और प्रवचनकार के गणि-पिटक से किया गया है, अतः कुछ बातें अनेक विषयों में एक जैसी प्रतीत हो सकती है। उनका समावेश इस संकलन में सलक्ष्य किया गया है क्योंकि इतने गम्भीर ग्रन्थ को कोई भी पाठक एक उपन्यास की भांति पूरा नहीं पढ़ सकता। जब भी किसी विषय पर बोलने, लिखने या जानने की जिज्ञासा होगी, पाठक उसी विषय को पढेगा, अतः एक भाव वाली कुछ सूक्तियां भी, यदि उनका शीर्षक भिन्न है तो उनका समावेश इस संकलन में किया गया है।

इस प्रकार लगभग ८० हजार से अधिक संकलित सुन्दर सूक्तियों और वाक्यावलियो में से प्रेरक, उपयोगी, आकर्षक और मर्मभेदी २१ हजार सूक्तियों तथा वाक्यांशों को ही "एक बूंद : एक सागर" में समेटा गया है।

नामकरण

इस संकलन के 'अमृत बूद', 'बूंदों में सिमटा सागर', 'तुलसी

वाङ्मय' आदि अनेक नाम सोचे गए किन्तु अन्त में प्रज्ञापुरुष युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा कल्पित "एक बूंद : एक सागर" नाम ही समीचीन और सार्थक लगा।

ग्रंथ-परिचय

यह ग्रन्थ पांच खंडों में विभक्त है। लगभग ४ हजार शीर्षकों में २१ हजार सूक्तियों का संकलन है। इसको समृद्ध बनाने में आचार्यश्री की तथा उनके बारे में लिखने वाले लेखकों की लगभग दो सौ पुस्तकों, यात्राग्रंथों तथा हजारों पत्र-पत्रिकाओं का उपयोग किया गया है। इस सग्रह में तीन भाषाओं का समावेश है—हिन्दी, राजस्थानी और संस्कृत। पाठकों की सुविधा के लिए संस्कृत सूक्तियों का हिन्दी मे अनुवाद भी दे दिया गया है। प्रत्येक खण्ड के प्रारम्भ में विषयानुक्रम है तथा उसके सामने उन पर्यायवाची शब्दों का भी कोष्ठक मे उल्लेख कर दिया गया है, जिन पर उस खंड मे सूक्तियां हैं। जैसे—अकर्मण्यता (दे० आलस्य), अभिमान (दे० अहकार) आदि।

इस संग्रह के पांचवें खंड में **'आत्मदीप'** शीर्षक के अन्तर्गत एक परिशिष्ट का समावेश भी किया गया है। उसमें आचार्यश्री के वैयक्तिक जीवन की अनुभूतियां और विश्वास उन्ही के शब्दो में संकलित है। यद्यपि उनके व्यक्तिगत जीवन की अनेक ऐसी अनुभूतियां हैं, जिन्हें सूक्ति रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता था पर विषय का वर्गीकरण होने के कारण उन्हें इसमे स्थान नही दिया गया है। **'आत्मदीप'** मे जिन वाक्यों का संकलन है, वे लगभग स्वान्तः सुखाय या आत्म-प्रेरणाएं हैं, पर वह अनुभवपूत वाणी हर व्यक्ति की अन्तश्चेतना को झंकृत करने मे समर्थ है। उदाहरण के रूप मे निम्न वाक्यों को देखा जा सकता है—

एकता और समन्वय के लिए यदि मुझे न्यायोचित बलिदान भी करना पड़े तो मैं सहर्ष तैयार हूं।

विरोध को सहते-सहते इतनी परिपक्वता आ गई है कि कभी नींद उड़ती ही नही।

मैं जानता हूं, मेरे पास न रेडियो, न अखबार और न ही आज के प्रचार योग्य वैज्ञानिक साधन हैं और न मैं इन सबका उपयोग ही करता हूं। लेकिन मेरी वाणी में आत्मबल है, आत्मा की तीव्र

शक्ति है और मुझे अपने संदेश के प्रति आत्म-विश्वास है। फिर कोई कारण नहीं कि मेरी यह आवाज जनता के कानों से न टकराए।

मैं कहूंगा कि मैं राम नहीं, कृष्ण नही, बुद्ध नहीं, महावीर नहीं, मिट्टी के दीए की भांति छोटा दीया हूं। मैं जलूंगा और अंधकार को मिटाने का प्रयास करूंगा, यह मेरा संकल्प है।

मैं कभी कभी क्लान्त होता हूं, कभी कभी उदास या निराश भी होता हूं। इसका मूल कारण मेरी अपनी दुर्बलता ही है।

लोग मुझे महात्मा कहते हैं। मै नहीं जानता कि मैं महात्मा हूं या नहीं। अपनी मान्यता में मैं आत्मा हूं, परमात्मा बनना चाहता हूं।

इन वाक्यों में उनकी सन्तता तो झलक ही रही है, साथ ही अपने आपको सच्चाई के साथ प्रकट करने का अद्‌भुत साहस भी पाठक इन वाक्यों में यत्र-तत्र देखेंगे। आत्मदीप के अन्तर्गत कहीं-कही उनकी अंतर्-पीड़ा भी मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्त हुई है—

- मैं युवकों का मेरे पास न आना सह सकता हूं, पर वे कर्त्तव्यहीन और पुरुषार्थहीन हो जाएं, यह सहन नहीं कर सकता।
- जब मै धार्मिकों की रूढ पूजा और उपासना देखता हूं तो बहुत पीड़ा होती है।

अन्तिम खंड में पांचों खण्डों का विषयक्रम तथा उसके सामने कोष्ठक में अन्य सभी शीर्षकों का एक साथ उल्लेख कर दिया गया है, जिससे अध्येताओं को सुविधा हो सके। जैसे, नारी विषयक शोधकर्त्ता सहज ही 'अबला' 'महिला' और 'स्त्री' शीर्षक भी देख सकेगा। क्रोध के बारे में जानकारी प्राप्त करने वाला 'आवेश', 'उत्तेजना' 'गुस्सा' 'कोप' 'रोष', आदि विषयक सूक्तियों को भी पढ़ सकेगा। प्रत्येक खंड के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत प्रयुक्त पुस्तकों एवं पत्रिकाओं की सूची और प्रकाशन का विवरण भी दे दिया गया है।

एक ही शीर्षक में कहीं-कही सूक्तियों तथा वाक्यावलियों में विषय-प्रतिपादन में विरोधाभास-सा दिखाई पड़ सकता है। किन्तु विषय के विविध पहलुओं को उजागर करने की दृष्टि से यह विरोधाभास असंगत नहीं है क्योंकि एक ही शब्द के अनेक अर्थ एवं अनेक व्याख्याएं हो सकती हैं। उदाहरणार्थ—देखें—विज्ञान, संघर्ष आदि विषय।

इस संकलन में कुछ उक्तियां परिभाषात्मक हैं किन्तु चमत्कार-पूर्ण होने से उनका भी संकलन किया गया है। उदाहरणार्थ—अध्यात्म जैसे गहन शब्द की परिभाषा बहुत कम शब्दों में कुशलतापूर्वक संदृब्ध है—

- अपने लिये अपने द्वारा अपना नियन्त्रण; यही है—अध्यात्म।
- अध्यात्म अर्थात् मन की, अन्त:करण की समस्या को सुलझाने वाला तत्त्व।

कुछ सूक्त विश्लेषणात्मक होने के कारण आकार में बड़े हो गये हैं, लेकिन भावों की विशिष्ट अभिव्यक्ति के कारण उनको भी इस संग्रह में संगृहीत किया गया है। जैसे—'भोग से सुख नहीं मिला, तब त्याग आया। दूसरे जीते नहीं गए, तब अपनी विजय की ओर ध्यान खिचा। हुकूमत बुराइयां नहीं मिटा सकीं, तब अपने पर अपनी हुकूमत का पाठ पढाया गया। आग से आग नही बुझी, तब प्रेम से बुझाने की बात सूझी। ये वे सूझें है, जिनमें चैतन्य है, जीवन है और दो को एक में मिलाने की क्षमता है।'

सैद्धान्तिक तथा दार्शनिक विषयों को सरसता के साथ प्रस्तुति देने की विलक्षण क्षमता आचार्यश्री की लेखनी में है। इसलिए सिद्धान्त और दर्शन के गहन विषयों को भी उन्होंने इतनी सरसता के साथ प्रस्तुत किया है कि अनेक सिद्धान्त विषयक वाक्यों ने सूक्तियों का रूप ले लिया है। जैसे—अनेकान्त, अकर्म, आस्तिक, स्याद्वाद, भावक्रिया, चार्वाक आदि।

कुछ सूक्तियां इतनी हृदयस्पर्शी है कि पढ़ते ही व्यक्ति आत्मविभोर होकर ऐसा महसूस करता है, मानो प्रत्येक बूंद सागर को अपने में समेटे हुए है, जैसे—

- अनुशासन का अस्वीकार जीवन की पहली हार है।
- सत्य का सूर्य उदित होते ही अफवाहों के बादल छंट जाते है।
- जो खुली आंखों से देखे, ठंडे दिमाग से सोचे और पूर्णनिष्ठा से कार्यक्षेत्र में उतरे, वह कभी असफल नहीं हो सकता।

कहीं-कही इन सूक्तियों की भाषा बहुत सीधी और सरल दिखाई पड़ती है, किन्तु भाषा में व्यंजकता का अभाव नहीं है।

इस संकलन में यह दावा तो नही किया जा सकता कि सभी वाक्य सूक्ति रूप है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन

वाक्यों में आत्ममंथन और अनुभूति को झंकृत करने की अद्भुत क्षमता है। इनमें एक ऐसी ज्योति सन्निहित है, जिसके प्रकाश मे बुद्धि और हृदय—दोनों एक साथ आलोकित होते है। सफल प्रवचन-कार के उद्धरण होने के कारण इन वाक्यावलियों में अनेक स्थलो पर शिक्षा और उपदेश का पुट भी मिलता है। प्रसिद्ध साहित्यकार कन्हैयालाल मिश्र ने आचार्यश्री के एक वाक्य पर अपनी टिप्पणी करते हुए लिखा है—"अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक सन्त तुलसी ने दो शब्दों मे विकृति प्राप्त सुख को न लेना और अप्राप्त की सतत चाह रखने का जो चित्र दिया है, उसे हजार विद्वान् हजार-हजार पृष्ठों की हजार पुस्तकों में भी नहीं दे सकते। संत की वाणी है—आज मनुष्य को पद, यश और स्वार्थ की भूख नही, व्याधि लग गई है, जो बहुत कुछ बटोर लेने पर भी शांत नहीं होती।"[1] ऐसे मर्मस्पर्शी और शाश्वत सत्य को प्रकट करने वाले वाक्य तभी लिखे जा सकते है, जब साधक चिंतन की भूमिका से हटकर अनुभव के स्तर पर जीने लगता है।

आगम, त्रिपिटक, वेद, रामायण, महाभारत आदि प्राचीन धर्मग्रंथों से भी सूक्ति-संकलन का कार्य समय-समय पर होता रहा है। इसी प्रकार भारतीय महर्षि एवं विचारक कबीर, तुलसी, रहीम, नानक, रवीन्द्र, गांधी, विवेकानन्द, राधाकृष्णन तथा विदेशी विद्वान् सुकरात, प्लेटो, रूसो, अरस्तू, कन्फ्यूशियस, बेकन, शोपेनहावर, वर्जिल, गेटे, एमर्सन, आईस्टीन, लिंकन आदि के विचार भी प्रभावशाली रहे है। इन विचारकों के विचारों के सम्मिलित चयन के प्रयास भी यदा-कदा हुए हैं। पर किसी एक व्यक्ति का इतना बड़ा सूक्ति-संग्रह देखने को नहीं मिलता। हाल ही में प्रकाशित विश्वसूक्ति संग्रह में सोलह हजार सूक्तियों का संचयन है, जिसमे सतरह सौ लेखक एवं लगभग १८ सौ संदर्भ ग्रंथों का प्रयोग किया गया है।

आचार्यश्री तुलसी की प्रकाशित-अप्रकाशित शताधिक रचनाएं हैं। एक विशाल गरिमापूर्ण और ज्ञानसम्पन्न धर्मसंघ का नेतृत्व करते हुए लाखों अनुयायियों को धर्म-प्रेरणा देते हुए आचार्यश्री तुलसी साहित्य-रचना के क्षेत्र में शलाकापुरुष माने जा सकते हैं। उनकी विविध विधाओं की रचनाओं के पारायण से जो बिन्दु संगृहीत हुए हैं, वे अनेक प्रतिभाओं को आचार्यश्री के साहित्य पर शोध करने

१. जैन भारती, फरवरी ५६।

के लिये प्रेरित कर सकेंगे—यह इस संग्रह का मूल्यवान् पक्ष है।

इस कार्य के दौरान अनेक वार निराशा ने भी घेरा, अनेक प्रतिक्रियाए भी सुनने को मिली पर मेरी संकल्प-शक्ति को आचार्य श्री की कृपादृष्टि ने आश्चर्यजनक ऊर्जा प्रदान कर मुझे इस असंभव दीखने वाले कार्य मे भी अनवरत लगाए रखा। यद्यपि इस कार्य का प्रारम्भ पांच वर्ष पूर्व ही कर दिया था किन्तु आगमो के शोध और सम्पादन कार्य मे सलग्न रहने के कारण इस कार्य मे अधिक समय नही लगा सकी। किन्तु इस वर्ष कार्य के साथ मेरी इतनी तन्मयता और एकात्मकता जुड़ गई कि फिर पीछे मुड़कर देखने को अवकाश ही नही मिला।

कार्य के दौरान अनेक वार यह सुझाव सामने आया कि संग्रह इतना वड़ा न होकर छोटा होना चाहिए, पर मेरे मस्तिष्क मे संत ज्ञानेश्वर की ये पक्तियां घूम रही थी—'अमृत को कोई अधिकाधिक परोसता जाए तो क्या कही कोई यह कहता है कि अव और नही चाहिये ?' इस प्रेरणा से यह संग्रह इतना विशाल हो गया।

पाठक इन सूक्तियों के माध्यम से आचार्यश्री को कही वैज्ञानिक के रूप मे पढ़ेगे, कही कुशल मनश्चिकित्सक के रूप में, कही धार्मिक नेता के रूप में, कही विलक्षण राजनीतिवेत्ता के रूप में, कही नीतिकार के रूप में, कहीं प्रबुद्ध साहित्यकार के रूप में, कहीं कुशल कवि के रूप मे, कही प्रकाण्ड संस्कृतवेत्ता के रूप में, कहीं विचक्षण शिक्षाविद् के रूप मे तो कही प्रौढ़ दार्शनिक के रूप में।

सूक्तियों के इस सग्रहदीप को मैं सुधीजनों के लिये मुण्डेर पर रख रही हूं ताकि जीवन-पथ के अंधेरों मे भटका व्यक्ति मार्गदर्शन प्राप्त कर सके। यह प्रयास तभी सार्थक होगा, जब जन-जन के हृदय-वारिधि में ज्ञान की उत्ताल तरंगें हिलोरें लेने लगेंगी और मानव के संतमसमय मस्तिष्क का आलोड़न-विलोड़न कर सूक्ति के प्रकाश से उस संतमस को प्रकाश किरणों में रूपान्तरित कर देगी। यदि एक सूक्ति भी जीवन के सकटपूर्ण क्षणों में समस्या को सुलझाने की सूझ दे सकी तथा स्थिति-परिवर्तन में सहयोगी वन सकी तो यह प्रयास और श्रम सार्थक हो सकेगा।

शिष्य गुरु के चरणों में जो कुछ अर्पित करता है, उसमें कृतज्ञता का सागर भरा होता है, अहोभाव की अनुभूतियां होती है, उसका हृदय उसमें उंडेला हुआ होता है। इस दृष्टि से लघु वस्तु भी

विराट्रूप ले लेती है। मेरा यह प्रयास भी और कुछ नही, मेरी आस्था, श्रद्धा और भावना की अभिव्यक्ति मात्र है। इस कार्य की सम्पन्नता में परमाराध्य आचार्यदेव, युवाचार्यवर एव महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाश्रीजी का आशीर्वाद और मार्गदर्शन तो मिलता ही रहा और भी अनेक व्यक्तियों ने मुक्तभाव से सहयोग दिया। जैन विश्व भारती के कुलाधिपति ने इस ग्रंथ को रमणीयता प्रदान करने के सुझाव तो दिए ही, साथ ही प्रकाशन की सारी जिम्मेवारी भी अपने ऊपर ले ली। संघ-परामर्शक मुनि श्री मधुकरजी, मुनि श्री दुलहराजजी एवं मुनिश्री गुलाबचंदजी का सहयोग एवं मार्गदर्शन भी स्मरणीय रहेगा।

साध्वीश्री सिद्धप्रज्ञाजी के सहयोग को भी भुलाया नही जा सकता जिन्होने आद्योपान्त प्रूफरीडिंग कर अपने अनेक सुझावों से मुझे लाभान्वित किया है। प्रेस कापी का पुर्नानिरीक्षण करने में जैन विश्व भारती के प्रवक्ता वच्छराजजी दूगड़ के आत्मीय सहयोग को विस्मृत नहीं किया जा सकता। नियोजिकाजी समणी परमप्रज्ञाजी एवं वर्ग की सहयोगिनी समणीजी निर्मलप्रज्ञाजी, सहजप्रज्ञाजी एवं ज्ञानप्रज्ञाजी का आत्मीय सहयोग भी उल्लेखनीय है। इस खंड की प्रूफ रीडिंग मे समणी सरलप्रज्ञाजी ने भी अपना श्रमदान दिया है। जैन विश्व भारती के सभी अधिकारी एवं कर्मचारी वर्ग का सहयोग भी उल्लेख्य है।

इस खंड के लिए हमें हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक एवं साहित्यकार डा० नागेन्द्र एव इस्लामिया कालेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० निजामुद्दीन की भूमिका प्राप्त हुई है। मैं उन दोनों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हू। अंत में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सभी शुभेच्छुओं और सहयोगियों के प्रति मगलभावना।

समणी कुसुमप्रज्ञा

अनुक्रम

सिद्ध

२४८७ सिद्ध वनने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—
• निर्मलता • तेजस्विता • गम्भीरता।

२४८८ जिसके लिए कुछ भी करणीय और प्राप्तव्य शेष नहीं रहता, वह सिद्ध होता है।

२४८९ बन्धनों की शृंखला से मुक्त शक्तिस्रोत हैं,
सहज निर्मल आत्मलय में सतत ओत-प्रोत है।
दग्ध कर भव-बीज-अंकुर अरुज अज अविकार हैं,
सिद्ध परमात्मा परम ईश्वर अपुनरवतार हैं॥

२४९० पुरुषार्थ की वैशाखियों के सहारे चलते हुए जो अपने सब प्रयोजन सिद्ध कर लेते हैं, वे सिद्ध कहलाते है।

२४९१ सिद्ध निष्काम हैं, पर उन्हें निकम्मा या आलसी नही कहा जा सकता क्योंकि वे पुरुषार्थ के द्वारा समस्त कार्यो को सम्पन्न कर स्वभाव में लीन रहते हैं।

२४९२ ॐ अर्हं अविचल अमल, अक्षय अरुज अनन्त।
साद्यनन्त-ठाणं 'णमो सिद्धाणं' लोगन्त॥

२४९३ अतनु अष्ट अघ नष्ट करि, तदनु अतनुता प्राप्त।
अतनु नमत स्पष्टाष्ट गुण, प्रतनु कर्म हो जात॥

सिद्धत्व

२४९४ ज्योतिर्मय, ज्ञानमय, आनंदमय, अनाविल चेतना का पुंज सिद्धत्व की अभिव्यक्ति है।

सिद्धपुरुष

२४९५ सामान्यतः व्यक्ति को अपनी प्रशंसा जितनी मीठी लगती है, गन्ने का रस भी उतना मीठा नही लगता पर सिद्धपुरुष इसके अपवाद रहते है।

२४९६ सिद्धपुरुष आंख से रूप देखते हैं पर उसके साथ कल्पनाओं का योग नहीं करते। इसीलिए कोई भी अप्रिय घटना उन्हें दुःख का संवेदन नहीं करा सकती।

२४९७ प्रतिकूल स्थिति प्राप्त करने पर जिस व्यक्ति के आकार-प्रकार में किंचित् भी अन्तर दिखाई नहीं देता, वही सिद्धपुरुष है।

२४९८ कोई भी दुःख छोटा और बड़ा नहीं होता, किन्तु अज्ञानी के लिए दुःख बड़ा होता है और ज्ञानी/सिद्धपुरुष के लिए साधारण।

सिद्धप्रज्ञा

२४९९ जो किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होती, स्थिर होती है, वह प्रज्ञा ही सिद्धप्रज्ञा हो सकती है।

सिद्धान्त

२५०० प्रयोग को विस्मृत करने वाला कोई भी सिद्धान्त अपनी अर्थवत्ता को उस रूप में प्रमाणित नहीं कर सकता।

२५०१ सुदृढ सिद्धान्त के आधार पर ही व्यक्ति अपने भावी जीवन को समुज्ज्वल बनाने के लिए संकल्प कर सकता है।

२५०२ सिद्धांतों की विस्मृति प्रतिकल आचरण करवाती है।

२५०३ कोई भी सिद्धांत वाद-विवाद और जय-पराजय के लिए नही, अपितु जीवन-जागृति के लिए होना चाहिए।

२५०४ वैयक्तिक दुर्बलता के आधार पर किसी गलत सिद्धान्त को स्थापित करना दोहरी भूल है।

२५०५ स्वीकृत पथ के प्रति समर्पित होने वाला सिद्धान्तों से दूर हो ही नहीं सकता।

२५०६ कोई भी सिद्धान्त जब तक समस्या के समाधान में सक्रिय नही होता, वह लोकग्राही नहीं बन सकता।

२५०७ जो सिद्धान्त किसी के काम न आए, वह आकाश-कुसुम की भांति है, जीवन के लिए उसका कोई उपयोग नहीं हो सकता।

२५०८ सिद्धान्तों की दुहाई सब देते है पर उन्हें जीवन के व्यवहार में ढालना महाभारत बन रहा है।

२५०९ यदि अंतर् का शोधन नहीं हुआ तो केवल सिद्धान्तों का उच्चारण, श्रवण और स्वीकरण विशेष लाभदायक नही हो सकता।

सिद्धान्तवादिता

२५१० सिद्धान्तवादिता भी व्यक्तित्व का एक घटक है।

सिद्धि

२५११ चिन्तन, निर्णय और क्रियान्विति—यह एक ऐसी त्रिपदी है, जो किसी भी कार्य की सिद्धि मे निमित्त बन सकती है।

२५१२ लक्ष्य निश्चित हो, पांव गतिशील हों तो सिद्धि दूर नहीं रहती।

२५१३ वस्तु मिलने पर प्रसन्नता और न मिलने पर विषण्णता—यह स्थिति जब तक रहेगी, सिद्धि प्राप्त होना दुर्लभ है।

२५१४ जिस बिंदु पर श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र मिल जाते है, एकमेक हो जाते है और पराकाष्ठा पर पहुंच जाते है, वही सिद्धि घटित होती है।

२५१५ जब तक साधना की बाधाओं का अन्त नही होगा, सिद्धि प्राप्त नही हो सकेगी।

२५१६ अपने प्रति गुरु के प्रति, और लक्ष्य के हेतु।
सहज समर्पण भाव है, स्वय सिद्धि का सेतु ॥

२५१७ बिना आराधना सिद्धि के क्षितिज नही खुलते।

२५१८ जीवन-पथ में आने वाले विभिन्न उतार-चढ़ावों में अपने संतुलन को न खोना ही सिद्धि का एकमात्र मार्ग है।

सिनेमा

२५१९ जनता को सबसे अधिक प्रभावित करने वाली कोई चीज है तो वह है—सिनेमा।

सिपाही

२५२० युद्ध के मोर्चे पर खड़ा रहने वाला सिपाही संयत नहीं रहेगा तो वह कभी विजय की बात नहीं सोच सकेगा।

सीख

२५२१ पात्रता के बिना सीख भी नहीं लग सकती।

२५२२ जिससे संस्कार शुद्ध, सुंदर और परिष्कृत न बने, उस सीख को सुंदर कैसे कहा जा सकता है ?

२५२३ जीवनगत सीख के अभाव में सहस्रों पुस्तकों का अध्ययन केवल पठनमात्र है।

२५२४ अच्छी सीख स्वीकृत नहीं होती, तो पुनः-पुनः स्खलना का शिकार होना पड़ता है, ठोकरें खानी पड़ती हैं।

२५२५ कर्तव्य से दूर हटाने वाली सीख जीवन को उन्नत बनाने में कैसे सक्षम हो सकती है ?

२५२६ निःस्वार्थी और त्यागी व्यक्ति ही अच्छी सीख दे सकते हैं।

सीता

२५२७ महासती सीता को अग्निस्नान करना पड़ा, पर वैसा करने से उसका सतीत्व सौगुना निखर उठा।

सीमा

२५२८ सीमाकरण वहां हानिकर होता है, जिसमें असीम के लिए कोई अवकाश नहीं रहता।

२५२९ जीवन जहां अकेला होता है वहां आदमी कुछ भी करे, कोई कठिनाई नही होती। पर जहां आदमी समूह के साथ जीता है वहां कुछ सीमाएं भी आवश्यक हैं।

२५३० प्रकृति यदि सीमा तोड़ दे तो विकृति हो जाती है।

२५३१ सीमा का अतिक्रमण अनपेक्षित और अपेक्षित का विवेक नहीं दे सकता।

२५३२ अरे मानव मनन कर सीमा अपेक्षित सर्वदा।
जहां सीमा टूटती, पग-पग उमड़ती आपदा ॥

२५३३ सीमा में रहकर ही असीम कार्य हो सकते हैं।

२५३४ सागर की अपनी सीमा है, धरती की अपनी सीमा है। सूरज, चांद और सितारे भी सीमा से बंधे हुए हैं। जंगल की अपनी सीमा है, शहर की अपनी सीमा है। पशु-पक्षी भी अपनी-अपनी सीमाओं का पालन करते है। इस सृष्टि का कोई भी तत्त्व सीमा तोड़ता है तो उथल-पुथल-सी मच जाती है।

२५३५ सीमा में रहना है संकट, यह दिल की नादानी।
बाहर पड़ा कि सड़ा, प्रवाहित पूजा पाता पानी ॥

२५३६ जब तक सीमा नहीं होगी, संयम नही होगा, आत्मानुशासन का विकास नहीं होगा, शान्ति की उपलब्धि नहीं हो सकेगी।

२५३७ दृष्टिकोण विशाल होता है, उदार होता है तो स्व और पर की सीमा समाप्त हो जाती है।

२५३८ स्वल्प संग्रह स्वल्प व्यय हो, चाह का सीमाकरण।
हो न शोषण और का बस, यही अपना आचरण ॥

सीमा-विस्तार

२५३९ व्यक्ति की सीमाओं का जितना अधिक विस्तार होगा, उसके दायित्व उतने ही बढ़ जाएंगे।

सुंदर

२५४० जिसका मस्तिष्क सुंदर होता है, वही व्यक्ति वास्तव में सुंदर होता है।

२५४१ संसार की हर वस्तु सहज सुन्दर हो सकती है पर तभी जब वह कलात्मक हो।

२५४२ जो लोग अपने व्यवहार को अच्छा नहीं बनाते, मन को शांत नहीं रखते और वाणी मे मधुरता नहीं घोलते, वे कितने ही सुन्दर क्यों न हों, किसी का मन नही मोह सकते।

२५४३ सुन्दर वही होता है, जो अन्तर्मन को प्रभावित करे।

२५४४ सत्संगरंगरचिता निचिता नितान्तं,
सत्यादिसार्वदिक् संयमिता गुणैर्ये।
आजन्मशीलसलिलाप्लवपूतगात्रा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥

(जो सत्संग के रंग से रंगे हुए, संयम से सयमित और आजीवन ब्रह्मचर्य रूप पानी मे स्नान कर अपने गात्र को पवित्र करते हैं, वे मनुष्य कामदेव के समान सुन्दर वन जाते हैं।)

२५४५ हम सुंदर दिखाई दें—इस भावना से ऊपर उठकर यह सोचे कि सुन्दर कैसे बनें ?

२५४६ वास्तव में सुन्दर चीज वही है, जो निरावरण होकर भी सुंदर लगे।

सुंदरता

२५४७ सुंदरता मनुष्य की आकृति में नहीं, उसके कर्तव्य में है।

२५४८ जीवन की सच्ची सुंदरता और सुषमा संयताचरण में है, बाहरी सुसज्जा और वासनापूर्ति में नहीं।

२५४९ मेरा यह दृढ विश्वास है कि व्यक्ति भले वह किसी भी युग में हो, सहिष्णुता के अभाव में वास्तविक सुदरता प्राप्त नही कर सकता।

२५५० कृत्रिम सौन्दर्य के वशीभूत मानव इतना नहीं सोचता कि उसकी यह सुन्दरता दूसरों के जीवन-वलिदान पर आधारित है।

सुख

२५५१ जो व्यक्ति दाने-दाने बिखरे हुए सुखों को बटोरकर भोगना जानता है, उसका जीवन आनन्द से भर जाता है।

२५५२ सुखमय जीवन का अभ्यासी आदमी दुःख का एक हल्का सा झटका भी झेल पाने में असमर्थ होता है।

२५५३ सुख-सुविधा पहुंचाने के लिए जितनी नई-नई सामग्रियां विकसित की जा रही हैं, जिन्दगी का सही सुख उतना ही दूर भागा जा रहा है और दुःख बाढ की तरह बढ़ता आ रहा है।

२५५४ मानसिक स्वस्थता और समाधि के बिना सुख की कल्पना ही व्यर्थ है।

२५५५ परिवार छोटा हो या बड़ा, सौहार्द न हो तो सुख का स्रोत सूख जाता है।

२५५६ आत्मदोषों की परम्परा को मिटाना ही सही अर्थ मे सुख की ओर अग्रसर होना है।

२५५७ जब तक मनुष्य मूर्च्छा का आवरण नही उतारेगा, सुख का दर्शन भी नहीं हो सकेगा।

२५५८ सुख की ओर अग्रसर होने के दो मार्ग है—अहिंसा और अपरिग्रह।

२५५९ जो व्यक्ति हर पल दुःख का रोना रोता है, उसके द्वार पर खड़ा सुख बाहर से ही लौट जाता है।

२५६० प्राणिमात्र अपने अधिकारो में रमणशील और स्वतन्त्र रहे, यही उसकी सहज सुख की स्थितिं है।

२५६१ आंतरिक भावों का समीकरण जहां है, वहीं आनन्द और सुख है।

२५६२ वास्तविक सुख वही है, जिसमें दुःख न हो, आपत्ति, विपत्ति न हो।

२५६३ कष्ट को कष्ट न मानना ही सुख का मार्ग है।

२५६४ सच्चा सुख किसी बांध से बंधा हुआ नहीं है, जो वहां से बहकर मनुष्य के पास पहुंच जाएगा।

२५६५ सुख का हेतु अभाव भी नहीं है, अतिभाव भी नही है, सुख का हेतु है—स्वभाव।

२५६६ वही सुख अंत तक सुखानुभूति दे सकता है, जो पदार्थ-निरपेक्ष हो।

२५६७ शहरी सोचते है—सुख गांवों में है, गांव वाले सोचते है—सुख शहरों में है। सत्य यह है—सुख न शहर में है, न गांव मे, न धन में है, न निर्धनता में। सच्चा सुख तो संतोष में है।

२५६८ वैराग्य की वृद्धि करना उत्कृष्ट कोटि का सुख है।

२५६९ दूसरे का सुख लूट कर अगर कोई स्वयं सुखी होना चाहता है तो वह सुख टिकाऊ नहीं होता।

२५७० समताशील व्यक्ति ही सच्चे सुख का अनुभव कर सकता है।

२५७१ आत्मानुशासन को अपने जीवन का लक्ष्य बनाए विना सच्चा सुख नहीं मिल सकता।

२५७२ सुख का रास्ता न सत्ता है और न वैभव। सुख का सही रास्ता है—परिश्रम।

२५७३ सुख का साधन वह वस्तु है, जिसको जितना अधिक अपनाया जाये, उतना ही अधिक सुख मिले।

२५७४ अच्छी वेशभूषा से कोई व्यक्ति सुखी नहीं होता, सुख तो आंतरिक सौन्दर्य में प्रस्फुटित होता है।

२५७५ जो व्यक्ति आध्यात्मिक सुख के प्रकम्पनों का अनुभव कर लेता है, उसके सामने बड़े से बड़ा भौतिक सुख भी नगण्य हो जाता है।

२५७६ सुखमिष्टं सर्वेषां, नाशान्तस्तत् क्वचित् क्षणं लभते।
(सुख सबको प्रिय है, किन्तु अशान्त व्यक्ति क्षण भर के लिए भी उसे नही पा सकता।)

सुख और शांति

२५७७ सुख इंद्रिय और मन की अनुभूति है। किंतु शांति आत्मा की समवृत्ति है।

२५७८ सुख शारीरिक स्रोतों से उत्पन्न होने वाली अनुभूति है लेकिन शांति का प्रतिष्ठान मन और आत्मा है।

२५७९ सात्त्विक आहार, पवित्र आचरण और संयत कार्य ही सुख और शांति के मूलमंत्र हैं।

२५८० आश्चर्य की बात है कि सुख और शांति की कामना व्यक्ति असंयम के धरातल पर खड़ा होकर करता है।

२५८१ भोग और विलास में वह सामर्थ्य नही है कि वह व्यक्ति को ऊंचाई और सुख-शांति की ओर ले जाए। सुख-शांति के लिए तो सम्राटों और बड़े-बड़े महाराजाओं को भी संयमी पुरुषों के चरण छूने पड़े है।

२५८२ जो लोग आन्तरिक सुख और शांति का जीवन जीना चाहते हैं, उनके लिए मर्यादा और अनुशासन बहुत आवश्यक है।

२५८३ जिस युग का आदमी सुख और शांति की कामना से हिंसा की परिक्रमा करता है और ढेर सारे आग्रहों को पालता है, वह रेत को पील कर तैल निकालना चाहता है।

२५८४ सुख-शान्ति का अनुभव स्वतन्त्र वातावरण में ही हो सकता है।

२५८५ लोभ और असंतोष को त्याग कर जो निर्लोभी और संतोषी बनेगा, वही शान्ति और सुख को पा सकेगा।

२५८६ जिसे अपनी अपूर्णता की निरंतर अनुभूति होती है, जिसे दूसरों में अच्छाई देखने की क्षमता प्राप्त है, वह सुख और शांति का जीवन जी सकता है।

२५८७ यदि मनुष्य में निर्भयता होगी तो सुख और शांति उसके जीवन में स्वत: उद्भूत होंगे।

२५८८ जब तक व्यक्ति अपने आचरण के प्रति सजग नहीं बनेगा, संसार की कोई भी शक्ति उसे सुख और शान्ति का वरदान नहीं दे सकेगी।

२५८९ जिसका मन क्रोध, द्रोह और प्रतिशोध के भावों से भरा रहता है, वह कभी भी शांति और सुख का अनुभव नहीं कर सकता।

२५९० अपने आपको प्राप्त करना ही अप्रतिहत सुख और शांति को प्राप्त करना है।

२५९१ साधारण लोग शांति के लिए सुख को नहीं ठुकरा सकते, किन्तु अशान्ति पैदा करने वाले सुख से बच तो सकते हैं।

२५९२ सच्चे दिल से अपराध की स्वीकृति और उसे पुन: न दोहराने का संकल्प मनुष्य को सुख और शांति की दिशा में अग्रसर कर सकता है।

सुखद

२५९३ लक्ष्यशून्य कोई भी काम सुखद नहीं होता।

सुख : दुःख

२५९४ दुःख के पीछे ही सदा, होता सुख संचार।
अत्युष्मा मे दीखते, वर्षा के आसार॥

२५९५ आत्म-संयम का भाव और अभाव ही क्रमशः सुख और दुःख का कारण है।

२५९६ सुख संध्या का लाल क्षितिज है, जिसके पश्चात् घनघोर अन्धकार है और दुःख प्रातःकाल की लालिमा है, जिसके पश्चात् प्रकाश ही प्रकाश है।

२५९७ दुःख सुख है सबल साथी, एक पीछे एक है।
दुःख देता प्रेरणा, 'तुलसी' अगर सुविवेक है॥

२५९८ कोई व्यक्ति किसी को सुखी या दुःखी नहीं बना सकता। सुख-दुःख का उत्स है—व्यक्ति का अपना संतुलन और असंतुलन।

२५९९ जितनी सहजता, उतना सुख। जितना अहं और बड़प्पन का भाव, उतना दुःख। सुख और दुःख की इस व्याप्ति को समझने वाला व्यक्ति अपने चारों ओर सुख का सागर लहराता हुआ देख सकता है।

२६०० सुख और दुःख का संबध पदार्थ से भी अधिक मनुष्य के मन से है। मन की कल्पना से सुख को दुःख में बदला जा सकता है और दुःख को सुख में बदला जा सकता है।

२६०१ सुखों के भुलावे में पड़ ज्यों-ज्यों व्यक्ति तृष्णा और लालसा को बढ़ाता है, वह अपने लिए दुःख जुटाता जाता है।

२६०२ प्रिय हो या न हो, फूल के साथ कांटा रहेगा ही।

२६०३ इच्छाओं की अपरिमितता दुःख और उनका निरोध सुख है।

२६०४ जहां कलह, ईर्ष्या, द्वेष, बेईमानी, अभिमान और परिग्रह है, वहीं दुःख है। जहां सौहार्द, समन्वय, प्रेम और शांति है, वहां सुख है।

२६०५ दुःख के बढ़ते हुए आतंक को देखकर लगता है—सुख का स्रोत बाहर नही, भीतर है।

२६०६ सुख दुःख के निमित्त बाहर हो सकते हैं, पर उनकी अनुभूति स्वयं व्यक्ति-सापेक्ष है।

२६०७ बन्धन दुःख है, मुक्ति सुख है। सुख-दुःख की यही परिभाषा है।

२६०८ रे रे चेतन क्यू घबरावै, कल्पित सारा ऐ सुख दुःख है।
है संयोग वियोग विधायक ओ जिनमत रो तत्त्व प्रमुख है॥

२६०९ सुख-दुःख का मापदण्ड धन नहीं है, आत्मभावना है, सहिष्णुता है, जीवन का हल्कापन है।

२६१० जितनी सादगी उतना सुख, जितना आडम्बर उतना दुःख—यह एक अमोघ घोष है।

२६११ जीवनविशुद्धि में सुख है और जीवन की अशुद्धि में दुःख—यह वस्तु सत्य है।

२६१२ दुःख को सहना कठिन है पर सुख को सहना उससे भी अधिक कठिन है।

२६१३ सुख और दुःख—दोनों जीवन के साथी है। दुःख से ही सुख की कल्पना होती है, क्योंकि वह सुख का आदि रूप है।

२६१४ दुःख भी अपने आप में प्रेरणा है। फिर भी मनुष्य सुख के सपने देखता है, और दुःख की छाया से दूर भागता है।

२६१५ सुख और दुःख व्यक्ति के मन मे है। अपने भावों द्वारा व्यक्ति किसी को भी प्रकट कर सकता है।

२६१६ जहां भी अपेक्षाएं बढ़ती हैं, वहां व्यक्ति को दुःख होता है और जहां निरपेक्षता का विकास होता है, वहां सुख होता है।

२६१७ सुख आया है तो वह भी जाने वाला है और दुःख आया है तो वह भी जाने वाला है।

२६१८ सुख-दुःख न तो आत्मा को होता है न शरीर को। जब दोनों संयुक्त रहते है, तभी सुख-दुःख की अनुभूति होती है।

सुखशय्या

२६१९ कामभोगों से विरक्ति एक ऐसी सुखशय्या है, जिस पर समारूढ़ साधक संसार के किसी भी आकर्षण में नहीं बंधता।

सुख-सुविधा

२६२० व्यक्ति के ऊपर सुख-सुविधा का ऐसा नशा छा जाता है कि फिर उठने की बात तक नजदीक नहीं आती।

२६२१ हम दुःख नही चाहते है तो हमें सुख-सुविधा को छोड़ना होगा।

सुखानुभूति

२६२२ जिस बालक ने दूध नहीं चखा, यदि पानी मे घुला आटा उसे दूध कहकर पिला दिया जाये और वह उसे दूध मान मिथ्या सुखानुभूति करे तो कौन-सा आश्चर्य है, क्योंकि उसकी बुद्धि सत्य से दूर है।

२६२३ भीतर के आनंद का स्रोत यदि सूख जाता है तो व्यक्ति बाहर कितनी ही दौड़-धूप करे, एक क्षण के लिए भी सुखानुभूति नहीं कर सकता।

सुखाभास

२६२४ कोई भी वेश्या नही चाहती कि उसकी पुत्री वेश्या बने। कोई भी हत्यारा नहीं चाहता कि उसका बेटा हत्या करना सीखे। क्योंकि वह सुख नहीं, सुखाभास है। जीवन की वास्तविकता नहीं, आरोपित अनुभव है।

२६२५ इस क्षण का सुख दूसरे क्षण दुःख में बदल जाता है—इसे सुखाभास न कहें तो और क्या कहें ?

२६२६ बाहर से भीतर आने वाला सुख सुख नहीं, सुखाभास है।

सुखी

२६२७ मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं कि दृढ़ संकल्प-शक्ति के साथ प्रामाणिकता स्वीकार कर, नैतिकता पर डटकर खड़े हो जाओगे तो देखोगे कि तुम ही सुखी हो।

२६२८ स्वयं जीवित रहें और दूसरों के जीने में बाधक न बनें, इसे स्वीकार करके ही मनुष्य सुखी बन सकता है।

२६२९ सत्य की शरण लेनेवाला सदा सुखी रहता है।

२६३० जिसका मन वश में है, वह सबसे ज्यादा सुखी है।

२६३१ यह दृढ़ सत्य है कि जब तक व्यक्ति स्वयं अपने लिए प्रतिकूल स्थिति को दूसरों के लिए उत्पन्न करता रहेगा, तब तक सम्भव नही है कि वह भी सुखी बन सके।

२६३२ आप वातानुकूलित भवन में रहते है, परन्तु पड़ोसी सब गरीब है तो आप सुखी नहीं रह सकते।

२६३३ राग-द्वेष रहित सात्त्विक वृत्ति का पालन करने वाला व्यक्ति ही सुखी होता है।

२६३४ जो व्यक्ति शुद्ध अन्तःकरण से धर्म की आराधना करता है, वह सुखी होता है।

२६३५ सच्चा सुखी वही है, जिसने आत्मदमन कर तृष्णा को शांत किया है।

२६३६ समाज और राष्ट्र की उपेक्षा कर कोई व्यक्ति सुखी कैसे हो सकता है?

२६३७ सुखी बनने के लिए कुछ कष्ट सहने ही होंगे, बलिदान करना ही होगा, त्याग करना ही होगा।

२६३८ धन तो चोर डाकुओं के पास भी होता है, चोरबाजारी करने वालों के पास भी होता है, परन्तु क्या वे सभी सुखी है?

२६३९ हम किसी को सुखी बनाने का ठेका तो नहीं ले सकते पर किसी के सुख को लूटें तो नहीं।

सुखी जीवन

२६४० सुखी जीवन का कोई एक सूत्र हो सकता है तो वह है—सहिष्णुता।

२६४१ अपनी आत्मा से किसी को दुःख न देना ही सुखी जीवन का रहस्य है।

२६४२ सुखी जीवन का साधन है—प्रकृति की महानता।

२६४३ आत्मौपम्य और सच्चिन्तन सुखी जीवन का मूलमंत्र है।

सुखी : दुःखी

२६४४ सत्कर्मा को कोई दुःखी नहीं बना सकता और दुष्कर्मा को कोई सुख नहीं दे सकता।

२६४५ अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति पैदा की जा सकती है पर किसी को सुखी या दुःखी नहीं बनाया जा सकता।

सुगति

२६४६ शरीर पर साधुता का लबादा ओढने मात्र से किसी की सुगति नहीं हो सकती। जो संसार में विरक्त होता है, वही सुगति का अधिकारी है।

२६४७ जीवन में सत्कर्म करने वाले की सुगति को कोई नहीं रोक सकता और दुष्कर्मा व्यक्ति को कोई सुगति दे नहीं सकता।

२६४८ जो पदार्थों में आसक्त है, शारीरिक सुख के लिए आकुल-व्याकुल रहता है, मौज-मस्ती का जीवन जीता है, केवल शारीरिक सौन्दर्य को निखारने में दत्तचित्त रहता है, उसकी सुगति कैसे हो सकती है ?

सुदृढ़

२६४९ हर स्थिति में सुदृढ़ रहने वाला व्यक्ति ही सही जीवन जी सकता है और अपने दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाह कर सकता है।

सुधार

२६५० सुधार के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपने लक्ष्य के अनुरूप संकल्प ग्रहण करे और गृहीत संकल्प को परिपोष देने के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करे।

२६५१ सुधार के दो तरीके हैं—कठोर अनुशासन और प्रेमपूर्ण व्यवहार।

२६५२ सही दिशा में शक्ति का उपयोग करने वाला व्यक्ति ही अपने जीवन को सुधार सकता है।

२६५३ एक बार गलती हुई, वह न दूसरी बार।
स्मरण रखो इस सूक्त को, होगा स्वतः सुधार॥

२६५४ आदमी सुधार की अपेक्षा तो महसूस करता है परन्तु वह चाहता है कि सुधार दूसरों से शुरू हो।

२६५५ व्यक्ति-व्यक्ति में सुधार के बीज बोए जाएंगे तो समाज और राष्ट्र में सुधार की पौध लहलहा उठेगी।

२६५६ आरम्भ का सुधार सहज होता है किन्तु जब बुराई संस्कार बन जाए, तब सुधार कठिन होता है।

२६५७ सुधार का मार्ग है—हृदय-परिवर्तन और बुराइयों के प्रति घृणा।

२६५८ संयम और व्यवस्था के समन्वय से ही सुधार सम्भव है।

२६५९ किसी के जीवन को सन्मार्ग की ओर ले जाना ही सच्ची सेवा या सच्चा सुधार है।

२६६० व्यापक सुधार के लिए व्यापक अभियान ही कार्यकारी हो सकता है।

२६६१ गलती एक क्षण में हो जाती है पर सुधार में लम्बा समय लगता है।

२६६२ सुधार के दो पहलू है—दायित्व और कर्त्तव्यबोध।

२६६३ एक सुधरा हुआ व्यक्ति अनेक व्यक्तियों के सुधार में निमित्त बन सकता है।

२६६४ व्यक्ति-सुधार का आधार है—चरित्र, सादगी व सच्चाई, जो अध्यात्मवाद की अमर देन है।

२६६५ सुधार के तीन सूत्र है—
- आत्म-निरीक्षण,
- आत्म-आलोचन,
- संकल्प।

२६६६ डंडे के बल पर या प्रलोभन के द्वारा किसी स्थायी सुधार की संभावना नहीं की जा सकती।

सुधारक

२६६७ यदि हृदय स्वच्छ और सुंदर नहीं, आत्मा में मलिनता है, केवल यश और स्वार्थ की भावना है, फिर वह सुधारक कैसे बन सकता है ?

२६६८ सुधारक अपने दायित्व के प्रति पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध हो और निरपेक्ष भाव से अपने मौलिक चिन्तन को प्रस्तुति देने की क्षमता रखता हो तो समाज की चेतना पर भी उसका अमिट प्रभाव हो सकता है।

सुप्त

२६६९ सोए हुए व्यक्ति को कोई भी धोखा दे सकता है।

२६७० सुप्त चेतना से विकीर्ण अणु व्यक्ति को पथच्युत कर देते है।

२६७१ सोए हुए व्यक्ति से दूसरों को जगाने की आशा करना क्या वैसा ही हास्यास्पद नही है, जैसा किसी अंधे व्यक्ति से पथ-दर्शन की आशा करना।

सुरक्षा

२६७२ सुरक्षा यदि दिमाग में है तो व्यक्ति कहीं भी सुरक्षा का अनुभव कर सकता है, अन्यथा सब जगह खतरा ही खतरा है।

२६७३ सुरक्षा का अर्थ यह नही कि किसी मरते व्यक्ति को जीवित कर दें। यह संभव भी नहीं है। क्योंकि जो भी संसार में जन्म प्राप्त करता है, वह एक दिन अवश्य मरता है। सुरक्षा का तात्पर्य है—आत्मगुणों की रक्षा।

२६७४ अपनी-सुरक्षा के लिए दूसरों के सहयोग की कामना करे, उससे पहले व्यक्ति अपनी हिम्मत बटोरे।

सुरक्षा-कवच

२६७५ त्याग एक सुरक्षा कवच है, जो असंयम के तीरों से सुरक्षा प्रदान करता है।

सुरक्षित

२६७६ सत्य, सीमित और हितकर भाषा बोलने वाला हर परिस्थिति में सुरक्षित रहता है।

२६७७ सुरक्षित वे ही व्यक्ति हो सकते हैं, जो सत्यनिष्ठ, नैतिक और अहिंसक होते हैं।

२६७८ कांच के महल में बैठकर पत्थर फेंकने वाला क्या कभी सुरक्षित रह सकता है?

२६७९ सुरक्षित जीवन जीने वालों को दो कार्य करने आवश्यक हैं— श्रम और मौन।

सुरा

२६८० सुरा एक मादक पदार्थ है, जो मानवीय चेतना को जड़ता से आच्छादित कर देता है।

सुलझन

२६८१ जीवन की विकट समस्याएं अहिंसा, सत्य, मैत्री और सद्वृत्ति से ही सुलझ सकती है और यह सुलझन क्षणिक नहीं, शाश्वत और चिरंतन होती है।

सुलभबोधि

२६८२ सुलभबोधि होने का अर्थ है—उस सीमा तक पहुंच जाना जहां से सम्यक्त्व के लिए किसी भी क्षण छलांग भरी जा सके।

२६८३ अभ्युदय का प्रथम सोपान है—सुलभबोधि होना।

सुविधा

२६८४ सुविधाओं की प्राप्ति होना एक बात है, पर उससे सुख या शांति मिलना नितान्त दूसरी बात है।

२६८५ जो चीज सुविधा से प्राप्त होती है, फिर चाहे वह ज्ञान हो या और कुछ, दु:ख आया कि विनष्ट हो जाती है।

२६८६ यह कितना बड़ा विपर्यास है कि वाद में व्यक्ति भले ही असुविधा को प्राप्त हो पर वर्तमान की सुविधा का त्याग वह नहीं कर सकता।

२६८७ सुविधाओं को बढ़ाने की बातें मीठी लगती हैं, किन्तु उन्हें बढ़ाने वाले आज कितने असंतुष्ट और अशान्त है, यह कौन नहीं जानता ?

सुविधावाद

२६८८ पुरुषार्थ से आंख मूंदकर मुफ्त में लाभ प्राप्त करने का मनोभाव सुविधावादी दृष्टिकोण है।

२६८९ सुविधावाद की भूमि इतनी उर्वर नहीं होती, जो मनचाही उपलब्धियों की फसल उगा सके।

२६९० सुविधावाद नशीली वस्तु की भांति एक बार तो व्यक्ति को आनन्द देता है पर आगे चलकर उसका परिणाम बहुत बुरा होता है।

२६९१ पुरुषार्थ के दीए को प्रज्वलित रखने के लिए सुविधावाद को तिलांजलि देनी ही होगी।

२६९२ सुविधावादी दृष्टिकोण मनुष्य को कर्त्तव्यविमुख, सिद्धान्त-विमुख और दायित्वबोध से विमुख बनाता है।

२६९३ सुविधावादी मनोवृत्ति में उलझने वाला अपने विवेक के चिराग को बुझाकर तमिस्रा के अपरम्पार सागर में बह जाता है, जहां इच्छाओं और आकांक्षाओं के विस्तार से सुख पा लेने का अक्षत विश्वास तार-तार हो जाता है।

२६९४ सुविधावाद को छोड़ना सतत प्रगति और उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक है।

२६९५ सुविधावाद धर्म की अवहेलना का सबसे बड़ा कारण है।

२६९६ सुविधा का भोग एक बात है, पर सुविधावादी बनना साधना को तिलांजलि देना है।

२६९७ जहां सुविधावाद मुख्य बना, वहां यथार्थवाद टिक नहीं सकता।

२६६८ सुविधावाद उसके लिए अभिशाप बन सकता है, जिस पर यह हावी हो जाए।

२६६९ सहज प्राप्त सुविधा का उपयोग करना सुविधावादिता नहीं है।

२७०० जहां सुविधावाद को प्रश्रय दिया जाता है, वहां चरित्र और आचरण की बात गौण हो जाती है।

२७०१ सुविधावाद से जो पाना है, वह नहीं मिलता, जो नहीं पाना है, वह मिल जाता है।

सुविधावादी

२७०२ सुविधावादी बनना प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से स्वयं को कमजोर बनाना है।

२७०३ सुविधावादी जिंदगी बिताने वाले कभी वास्तविक शांति को छू नहीं सकते।

२७०४ सुविधावादी व्यक्ति अपनी क्षमता का सही उपयोग नहीं कर सकता।

सुविनीत

२७०५ बात बात प्रवचन प्रवचन में गण गणपति रो नाम।
सुविनीतां री सरल कसौटी, दो चावल कर थाम॥

२७०६ संस्कारी सुविनीत का, बढ़ता यश अविवाद।
भारिमाल मघ को मिला, गुरुमुख कृपा प्रसाद॥

२७०७ पग-पग पर गुरु रो भय राखै, ताके नहीं कुनीत।
महर नजर अभिलाखै, आ ही सविनीतां री रीत॥

सुषुप्ति

२७०८ खुली आंखों में भी व्यक्ति गहरी सुषुप्ति में रह सकता है।

२७०९ आज जो जीवन मिला है, बोधि मिली है, जागरण का क्षण उपलब्ध हुआ है, उसमें यदि सो गए तो फिर यह क्षण लौटकर कभी नहीं आएगा।

२७१० सुषुप्ति में चिंतन का स्रोत सूख जाता है और बदलाव की प्रक्रिया रुक जाती है।

२७११ जागने की प्रेरणा पाकर भी जो सोते रहते हैं, वे अपना हित नहीं साध सकते।

सुषुप्ति और जागरण

२७१२ सुषुप्ति अंधकार है, जागरण प्रकाश है। सुषुप्ति मृत्यु है, जागरण अमृत है। सुषुप्ति असत् है, जागरण सत् है। सुषुप्ति प्रमाद है, जागरण अप्रमाद है।

सूक्ति

२७१३ विश्व की जटिल से जटिल समस्या का समाधान सूक्तियों से सहज ही सम्भव हो जाता है।

२७१४ कभी-कभी हजारों बातों से जीवन में रूपान्तरण नही आता, किंतु एक मार्मिक सूक्ति जीवन को पूर्णत: बदल देती है।

सूक्ष्मदर्शी

२७१५ सूक्ष्मदर्शी वही होता है, जो पहले उपादान देखता है, फिर परिस्थिति का मूल्यांकन करता है।

सूक्ष्मबुद्धि

२७१६ बोलने से पहले और बोलते समय सूक्ष्मबुद्धि को काम में लेना आवश्यक है, अन्यथा अनेक जटिल समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।

सूझ

२७१७ समय की सूझ के लिए बुद्धि का तीखापन आवश्यक है।

२७१८ साधना हो, सेवा हो या व्यवस्था अपनी सूझबूझ और स्वतंत्र चिंतन का विकास हुए बिना कोई भी व्यक्ति सुव्यवस्थित और सुनियोजित रूप से कार्य करने में सफल नहीं हो सकता।

सूरज

२७१९ अगर सूर्य कोई वड़ा कार्य करता है तो यही करता है कि वह सोए संसार को जगाता है, अन्यथा हम सोए ही रहते ।

२७२० सूरज उगता है । वह प्रतिदिन अपने उदग्र तेज के साथ आता है और आकर चला जाता है ? पर क्या अंधकार का नाम शेष हुआ है ? क्या उसका अस्तित्व कुछ भी कम हुआ है ? सूरज इन प्रश्नों में उलझे विना अपना काम कर रहा है और करता रहेगा ।

सृजन

२७२१ सृजन की छटपटाहट उत्पन्न हो जाए तो तत्त्वज्ञान के रेगिस्तान में भी प्रज्ञा की नई धाराएं वहने लगती हैं ।

२७२२ नये-नये स्वप्न देखने की चेतना का जागरण जब तक नहीं होता, तब तक व्यक्ति बंधी बंधाई लकीरों पर ही चलता है, कोई नया सृजन नही कर सकता ।

२७२३ मनुष्य का सृजन हर दृष्टि से परिपूर्ण हो, यह संभावना बहुत कम है । पर सृजनकाल से पूर्व उसके सम्वन्ध में जो धारणाएं बनती है, उनकी पूर्णता भी जीवन की वहुत वड़ी सफलता है ।

२७२४ अवरोध को तोडकर सृजन का सकल्प लेकर चलने वाला व्यक्ति कभी यह नही सोचता कि उसने अमुक काम क्यों किया अथवा यह काम कैसे पूरा होगा ?

२७२५ जव तक चिंतन की शक्ति जागृत नहीं होती, सृजन की क्षमता दवी रहती है ।

२७२६ व्यक्ति की मैत्री और सौहार्दपूर्ण मनोवृत्ति सृजन के क्षेत्र में बहुत बड़ी उपलव्धि है ।

२७२७ व्यक्ति की किसी भी प्रवृत्ति से नया सृजन नही होता है तो मान लेना चाहिए वह व्यक्ति शक्तिसंपन्न नही है ।

२७२८ नई सृष्टि को चलाना कठिन होता है, चलने के वाद उसमे सहजता आ जाती है ।

२७२९ सृजनधर्मिता को विकसित करने के लिए सकारात्मक ढंग से देखने और सोचने की जरूरत है।

२७३० सृजन सबको प्रिय है, पर वह है बहुत कठिन।

२७३१ सृजनात्मक दृष्टिकोण ही विकास का मुख्य हेतु है।

२७३२ जो अन्तर्मन से भूल का अनुभव कर लेता है, उसके जीवन में सृजन के नये-नये उन्मेष उद्घाटित होते रहते हैं।

सृजन : विध्वंस

२७३३ सृजन बौद्धिक चेतना का प्रतीक है, जबकि विध्वंस बौद्धिक अक्षमता और कुंठा का द्योतक है।

सृजनशील

२७३४ सृजनशील व्यक्तियों की खोज और निर्माण का सिलसिला बराबर चलता रहे तो गति में अवरोध या ठहराव का प्रसंग नहीं आ सकता।

सृष्टि

२७३५ सृष्टि का यह शाश्वत क्रम है कि जहां संयोग है, वहां वियोग है, जो खिलता है, वह मुरझाता है और जो जन्म लेता है, वह मृत्यु को भी प्राप्त होता है।

२७३६ सृष्टि को रखना है तो प्रदूषण को रोकना होगा।

२७३७ सृष्टि का जीवन सापेक्ष है। इसमें जड और चेतन जितने पदार्थ हैं, वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। सृष्टि के किसी कोने में कुछ भी घटित होता है, उसका प्रभाव सब पर पड़ता है।

सृष्टिनियंता

२७३८ एक दृष्टि से मनुष्य ही सृष्टि का नियंता है।

सृष्टि-सन्तुलन

२७३९ धरती, हवा, पानी और वनस्पति सृष्टि-संतुलन के आधार-भूत तत्त्व हैं। ये जैसे है, वैसे ही बने रहें तो सृष्टिका संतुलन बना रहता है। इनमें गड़बड़ी होने से संतुलन बिगडने का खतरा बढ़ता है।

२७४० संयम सुरक्षित है तो सृष्टि का संतुलन बिगड़ेगा नहीं। संयम टूटेगा तो संतुलन को टूटने से रोका नहीं जा सकेगा।

२७४१ धरती से खनिजो का अतिमात्रा में दोहन सृष्टि-संतुलन की एक बड़ी बाधा है।

२७४२ प्राकृतिक व्यवस्था के साथ छेड़छाड़ करने से सृष्टि का असंतुलन बढ़ता है।

सृष्टि-संरचना

२७४३ जहां सृष्टि की सरचना ईश्वर के अधीन हो, वहां व्यक्ति की सावधानी अकिञ्चित्कर हो जाती है।

सेनानायक

२७४४ सेना कड़ा-जूड़ है सारी, शस्त्रा स्यू सन्नद्ध।
पर लायक सेना अधिनायक स्यूं सारी संबद्ध॥

सेवक

२७४५ निःस्वार्थ सेवक और सच्ची सेवा इन दोनों का यदि संयोग मिल जाए तो शब्दों के द्वारा उसकी सफलता का वर्णन नही किया जा सकता।

२७४६ केवल पूर्वजों का गुणगान करने वाला सच्चा सेवक नहीं हो सकता।

सेवा

२७४७ सेवा एक ऐसा सेतु है, जो साधक को अपने साध्य तक सहजता से पहुंचा सकता है।

२७४८ सेवा का अर्थ है—बिना किसी शर्त व्यक्ति का पूर्णरूप से समर्पण।

२७४९ सेवा वह आश्वासन है, जो व्यक्ति को आपत्कालीन दुश्चिन्ता से मुक्त रखता है।

२७५० सेवा का तात्पर्य है—अपने चरित्र से दूसरों के जीवन को जागृत करना।

२७५१ सेवा का रास्ता बिल्कुल सपाट होता है। वहां अपने और पराये की भेदरेखा समाप्त हो जाती है।

२७५२ जो लोग स्वार्थभावना से प्रेरित होकर सेवा करते हैं, उनका उद्देश्य संकुचित होता है।

२७५३ थोपी हुई या ओढ़ी हुई सेवा के पीछे परस्परता की भावना नहीं रहती।

२७५४ जिस सेवा के पीछे आसक्ति हो, यश या नाम की भूख हो, विनिमय की शर्त हो, वह सेवा अपनी पवित्रता के आगे प्रश्नचिह्न उपस्थित कर देती है।

२७५५ सेवातन्तोरनुस्यूत्या, संघस्यैकत्वमिष्यते।
सेवातन्तोश्च विच्छित्या, संघच्छेदोऽपि जायते॥
(सेवारूपी तंतु की अनुस्यूति से संघ में एकत्व घटता है, पर उस धागे के टूट जाने पर संघ भी छिन्नभिन्न हो जाता है।)

२७५६ हार्दिकभाव से जो सेवा होती है, उसकी सोंधी गंध मन और प्राणों को पुलकन से भर देती है।

२७५७ जितने महान् व्यक्ति हुए हैं, उन्होंने किसी न किसी रूप में सेवा का व्रत स्वीकार किया ही है।

२७५८ सेवा का अर्थ है—मनुष्य मात्र मे अपनेपन का अनुभव करना और सबके साथ अपनत्व का व्यवहार करना।

२७५९ निःस्वार्थ सेवा वही कर सकता है, जो अपनी अहंवृत्ति को तोड़ चुका है तथा जो सम्मान और प्रतिष्ठा के व्यामोह से ऊपर उठ चुका है।

२७६० वह कैसी सेवा है, जो व्यक्ति को प्रसन्नता का वरदान प्रदान न करे।

२७६१ सेवा लेने का अधिकारी वही है, जो दूसरों की सेवा करे।

२७६२ प्राणिमात्र के प्रति बन्धुत्व की भावना, उसे आत्मवत् समझना ही सच्ची सेवा है।

२७६३ निश्छल, पवित्र और उदार व्यक्ति ही सेवा का आदर्श उपस्थित कर सकता है।

२७६४ सेवा संगठन की शक्ति का मूल आधार है।

२७६५ सेवा कार्या स्वात्मधर्मं विचिन्त्य,
विद्या देया स्वात्मधर्मं विचिन्त्य।
विद्या ग्राह्या नेति बुद्ध्यैव सेवा,
सेवा प्राप्ता नेति बुद्ध्यैव विद्या॥
(इसने मुझे विद्या दी है, इसलिए मैं इसकी सेवा करूं और इसने मेरी सेवा की है, इसलिए मैं इसको विद्या दू, ऐसा नहीं सोचना चाहिए। अपना आत्मधर्मं समझकर ही सेवा करनी चाहिए और विद्या देनी चाहिए।)

२७६६ सेवा को तपस्या न मानना बड़ी भूल है।

२७६७ कम से कम लो अधिक दो, सेवा धर्म विचार।
रखो सभी के साथ में, प्रतिपल शिष्टाचार॥

२७६८ सेवा के साथ प्रलोभन की बात जुड़ते ही आत्मोदय का लक्ष्य विस्मृत हो जाता है।

२७६९ सेवा शाश्वतिको धर्मः, सेवा भेदविसर्जनम्।
सेवा समर्पणं स्वस्य, सेवा ज्ञानफलं महत्॥
(सेवा शाश्वत धर्म है, सेवा भेद-विसर्जन है, सेवा स्वयं का समर्पण है और सेवा ही ज्ञान का महान् फल है।)

२७७० सेवा लेने और देने के क्रम से परस्परता बढ़ती है और संबंधों की कड़ी मजबूत होती है।

२७७१ सेवाभावना व्यक्ति की लोकप्रियता का मुख्य हेतु है।

२७७२ जब तक मन में करुणा का अंकुर नहीं फूटता, तब तक आदमी सेवा की ओर नहीं बढ़ सकता।

२७७३ सच्चे मन से सेवा करने वाला अपने सुख-दुःख को गौण कर देता है।

२७७४ सेवा अशिक्षित या अज्ञानी व्यक्ति का काम नहीं है। ज्ञानी और विवेक सम्पन्न व्यक्ति ही अच्छी सेवा कर सकता है।

२७७५ जब तक दूसरो के शरीर को अपना शरीर मानने का भाव जागृत नही होता, रुग्ण साधक के साथ तादात्म्य नहीं जुड़ता, आत्मभाव से सेवा नही हो सकती।

२७७६ सेवाव्रत का अर्थ त्याग है। यह एक बहुत बड़ी साधना है।

२७७७ सेवा एक ऐसा जीवन मूल्य है, जो संगठन को मजबूत ही नही बनाता, उसके चरित्र को उदात्त भी बनाता है।

सेवाभावी

२७७८ कोई साधक परम ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी, वक्ता, कलाकार हो या न हो, पर सेवाभावी अवश्य हो।

२७७९ जिस समाज के लोग सेवाभावी नहीं होते, वे अकर्मण्य बन जाते है।

२७८० महान्तो ज्ञानिन. सन्ति, महान्तो ध्यानिनस्तथा।
तेभ्योऽपि सुमहान्तश्च, सन्ति सेवापरायणा: ॥
(ऐसे तो ज्ञानी भी महान् होते हैं और ध्यानी भी। किंतु सेवापरायण मनुष्य सबसे महान् होते है।)

सैनिक

२७८१ सच्चा सैनिक वही होता है, जो अपनी आत्मा पर विजय पाता है और अपनी दुष्प्रवृत्तियों से जूझता है।

सोच

२७८२ जिस व्यक्ति की सोच विकसित नही होती, वह किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्य का निर्णय नही ले सकता।

२७८३ भय, प्रलोभन और स्वार्थ से मुक्त रहकर ही व्यक्ति अपनी सोच की सूई को सही दिशा में घुमा सकता है।

२७८४ जो व्यक्ति सही ढंग से सोचना सीख लेता है, वह स्वयं शक्ति और शांति को उपलब्ध हो जाता है।

२७८५ यदि सोच सही है तो हाथ से कोई गलत काम हो ही नहीं सकता। किन्तु जब सोच में विकृति का प्रवेश हो जाता है तो विवेक की डोर व्यक्ति के हाथ से छूट जाती है।

२७८६ पूर्ण और सुविचारित सोच मनुष्य के व्यक्तित्व का बहुत बडा हिस्सा है।

२७८७ उस सोच का सबसे पहले परिमार्जन हो, जो असत्य को सत्य समझने का महान् पाप करती है।

२७८८ मनुष्य अगर अपनी सोच को काम में न ले, मनन न करे, निदिध्यासन न करे तो उसे यंत्र से अधिक मूल्य कैसे मिल सकता है ?

२७८९ व्यक्ति की जैसी सोच होती है, वैसी ही प्राप्ति हो जाती है।

२७९० कोई व्यक्ति कोई बात कहता है, वह प्रिय लगती है। वही बात दूसरा कहता है तो मूड बदल जाता है। दो व्यक्ति एक ही गलती करते है। एक की गलती बहुत बड़ी दिखाई देती है और दूसरे की गलती बहुत साधारण रूप में ली जाती है। यह दृष्टिकोण और सोच का अन्तर है।

२७९१ अगर सोच बदल जाए तो हर स्थिति में सुख की अनुभूति संभव है, अन्यथा नई-नई समस्याएं पैदा होती रहेंगी।

२७९२ हम क्यों सोचते है कि हमारे सामने कोई समस्या न रहे। बल्कि हर समस्या से जूझने का सामर्थ्य हम बढ़ाते रहें, यह सोच जरूरी है।

२७९३ जिस व्यक्ति की सोच और समझ परिमार्जित होती है, वह आचरण के क्षेत्र मे अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है।

२७९४ मनुष्य और कुछ सोचे या नही, पर इतना अवश्य सोचे कि आनंदमय जीवन कैसे जीया जा सकता है ?

२७९५ सही सोच जीवन को बुराइयो से सुरक्षित रखने का अमोघ साधन है।

सोमरस

२७९६ सोमरस अमृत का प्रतिनिधि है, इसका पान करने से क्षणिक तृप्ति ही नहीं होती, व्यक्ति अमरत्व की दिशा में गति करने लगता है।

सौन्दर्य

२७९७ कोई वैज्ञानिक संवेदनशील यंत्रों के माध्यम से वायुमंडल में विकीर्ण उन वेजुवान प्राणियों की करुण चीत्कारों के प्रकम्पनों को पकड़ सके और उनका अनुभव करा सके तो कृत्रिम सौन्दर्य संबंधी दृष्टि वदल सकती है।

२७९८ वस्तु की वह क्षमता, जो मानव-मन को अपनी ओर आकृष्ट कर सके, सौन्दर्य कहलाती है।

२७९९ सत्य के विना सौन्दर्य का मूल्य नहीं हो सकता।

२८०० जिस सौन्दर्य-सामग्री में मूक प्राणियों की कराह घुली हुई है, उनका प्रयोग करने वाले अपने शरीर को भले ही सुन्दर वना लें, उनकी आत्मा का सौन्दर्य सुरक्षित नहीं रह सकेगा।

२८०१ जीवन की खूवसूरती वड़े-वड़े भवनों, कल-कारखानों, सड़कों, वसों, ट्रेनों, स्कूलों, कालेजों आदि से नहीं वढ़ती। उसके लिए अपेक्षित है आन्तरिक सौन्दर्य के ऐसे तत्त्व, जो विखराव की चेतना को सृजन में वदल देते हैं।

२८०२ शिवं यत्र भवेत्तत्र, सौन्दर्यं सहज भवेत्।
(जहां शिव है, वहां सौन्दर्य सहज रूप से होता है)

२८०३ कृत्रिम सौन्दर्य असौन्दर्य का सर्जक है।

२८०४ जिस सौन्दर्य से सत्य और शिव की उपासना में सहयोग मिलता है, वह एक स्थिति में काम्य होता है किन्तु केवल प्रदर्शन के लिए सौन्दर्य को महत्त्व देना उचित नहीं हो सकता।

२८०५ व्यवस्थाकृत सौन्दर्य आंतरिक संयम के आधार पर टिकता है। उसके विना व्यवस्थाओं के पालन में प्रामाणिकता नहीं रह पाती।

२८०६ सौन्दर्य वस्तु में नहीं, मनुष्य की भावना में है।

२८०७ जहां वाह्य रूप सुन्दर होता है, पर आंतरिक रूप सुन्दर नहीं होता, वहां सौन्दर्य मात्र प्रदर्शन होता है। वस्तुतः बाह्य और आभ्यन्तर—दोनों सुन्दर हों, तभी सौन्दर्य की बात पूरी होती है।

२८०८ सौन्दर्य का सम्बन्ध रंग-रूप से नहीं, कलात्मकता से है।

सौभाग्य

२८०९ सच्ची श्रद्धा मिलना सौभाग्य का चिह्न है।

सौभाग्यशाली

२८१० वह बहुत सौभाग्यशाली है, जो अनवरत गति करता हुआ भी कभी ठोकर न खाए, स्खलित न हो।

२८११ वह व्यक्ति सौभाग्यशाली होता है, जो यथार्थ के प्रति श्रद्धाशील बना रहता है।

सौमनस्य

२८१२ सौमनस्य का मार्ग है—हम दूसरों के अपराधों की गांठ बांध कर न बैठें।

२८१३ सौमनस्य ही ऐसा तत्त्व है, जो व्यक्ति को आंतरिक सुंदरता प्रदान कर सकता है।

२८१४ सौमनस्य के द्वारा अशांति से शांति की ओर, कलह से प्रेम की ओर जीवन गतिशील बनने लगता है।

सौराज्य

२८१५ सौराज्य वह है, जिसमें एक दूसरे के प्रति घृणा फैलाने की चेष्टा न की जाए।

२८१६ सौराज्य वह है, जिसके देशवासी अपने धर्माचरण में पूर्णतः स्वतंत्रता का अनुभव करे।

सौहार्द

२८१७ निष्पक्ष सौहार्द ही संगठन का पोपक होता है।

२८१८ सौहार्द और मैत्री का विकास होने से ही स्वतंत्रता का वास्तविक आनंद मिल सकेगा।

२८१९ सौहार्द के विना भी जीवन तो जीया जा सकता है किंतु उसमें वह समरसता और जीवटता नहीं रहती, जो व्यक्ति को आह्लाद की अनुभूति दे सके।

२८२० यदि सौहार्द से रहने की अभिलापा है तो व्यक्तिगत आक्षेप छोड़ो, एक दूसरे पर छींटाकशी करना छोड़ो, हिंसक मनोवृत्ति का त्याग करो।

२८२१ प्रतिशोध की आग सौहार्द के अंकुर को भस्मसात् कर मन की धरती को बंजर वना देती है।

२८२२ यदि पारस्परिक सौहार्द की आवश्यकता नही है तो समझना चाहिए कि युग को अमन-चैन की भी आवश्यकता नही है।

२८२३ इतिहास साक्षी है कि समाज की धरती पर जितने घृणा के बीज बोए गए, उतने प्रेम और सौहार्द के वीज नहीं वोए गए।

२८२४ एक मनुष्य दूसरे को गिराना चाहता है, खत्म करना चाहता है, यह भावना पारस्परिक सौहार्द को खंडित करने वाली है।

२८२५ सौहार्द ऐसा अमोघ तत्त्व है, जो कभी निष्फल नही होता।

२८२६ सौहार्द के अभाव में मानवजाति की मुस्कान फीकी पड़ जाती है और जीवन बोझिल वन जाता है।

२८२७ आज सौहार्द का जहाज युगीन सभ्यता के सागर में डूब रहा है, यह सबसे अधिक चिंता का विषय है।

२८२८ जन्म के लिए सौहार्द की अपेक्षा नही होती, पर जीने के लिए वह एक आवश्यक तत्त्व है।

२८२९ जिस दिन सौहार्द के बीज अंकुरित होंगे, समाज का जीवन-स्तर ऊंचा उठ जाएगा।

२८३० जीवन को सुखमय और आनन्दमय बनाने का सर्वोपरि तत्त्व है—सौहार्द ।

२८३१ सौहार्द एक विधायक भाव है। यह व्यक्ति-व्यक्ति को जोडता है और सम्बन्धों को विस्तार देता है।

२८३२ जो समाज सौहार्द को विकसित नहीं कर पाता, वह आगे नहीं बढ़ सकता।

२८३३ यदि परिवार से दूर रहने पर भी सौहार्द का सेतु जुड़ा हुआ रहे तो वहुत सी नयी उभरने वाली समस्याओं को रोका जा सकता है।

२८३४ अहिंसा और मैत्री की पहली कसौटी है—सौहार्द ।

२८३५ सौहार्द समाप्त होने पर सम्बन्धों की मधुरता समाप्त हो जाती है।

२८३६ दूसरों की कमियो को सहन किए बिना कोई भी व्यक्ति सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण नही कर सकता।

२८३७ सौहार्द के लिए यह जरूरी है कि व्यक्ति केवल अपने सत्य को ही महत्त्व न देकर दूसरे के सत्य को भी समझे।

२८३८ सन्देह सौहार्द का विघटक तत्त्व है।

२८३९ निःस्वार्थ सेवा भावना जिन परिवारों में होती है, वहां सौहार्द का अस्तित्व अवश्यंभावी है।

२८४० आग्रह सौहार्द का बाधक तत्त्व है।

सौहार्दहीनता

२८४१ सौहार्दहीनता से व्यक्ति अकेला हो जाता है। अकेलेपन की कुंठा और निराशा उसे भीतर ही भीतर तोड़ती जाती है।

२८४२ सौहार्दहीनता जीवन की मूर्च्छावस्था का प्रतीक है।

स्कूल

२८४३ अच्छा स्कूल वही है, जो चरित्रवान् व्यक्तियों का निर्माता है।

स्खलना

२८४४ जो व्यक्ति चलता है, वह स्खलित हो सकता है। गति-स्खलन के भय से चलना नही छोड़ा जा सकता।

२८४५ संयम के संस्कार जब तक परिपुष्ट नही होते, व्यक्ति चलता-चलता स्खलित हो जाता है।

२८४६ वर्तमान पीढ़ी की छोटी सी स्खलना आने वाली कई पीढ़ियों को मानसिक दृष्टि से अपाहिज या संकीर्ण बना सकती हैं।

२८४७ स्खलना का अवकाश तब तक रहता है, जब तक व्यक्ति चरम साध्य—वीतरागता को उपलब्ध नहीं हो जाता।

२८४८ स्खलना होने पर संशोधन का लक्ष्य रहे तो धीरे-धीरे उस स्थिति तक पहुंचा जा सकता है, जहां स्खलना होने की सम्भावना क्षीण हो जाती है।

स्तवना

२८४९ शक्ति, अभिव्यक्ति और विरक्ति के साथ की जाने वाली स्तवना ही सार्थक बन सकती है।

२८५० स्तवना और उपासना का लक्ष्य जीवन-शुद्धि, आत्म-उल्लास और बंधनमुक्ति है।

२८५१ केवल शाब्दिक स्तवना से क्या बनेगा, यदि जीवन को ऊंचे आदर्शों में ढालने का प्रयास न किया जाए?

स्तुति

२८५२ स्वार्थपूर्ति के लिए किसी की स्तुति करना यथार्थ पर परदा डालना है।

स्तेय

२८५३ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करता है, उसे अधिकार में लेता है, दास बनाता है, आदेश मनवाता है, स्वत्व छीनता है, यह सब स्तेयवृत्ति है।

२८५४ बिना पूछे किसी के हक का एक तिनका भी उठा लेना या धूल की एक मुट्ठी भी ले लेना स्तेय है।

स्त्री

२८५५ स्त्रियों की संगठन शक्ति, संकल्प की दीप्ति और पौरुष की अभिव्यक्ति समन्वित होकर विश्व में नई चेतना का जागरण कर सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

२८५६ विज्ञापनों, पोस्टरों आदि में स्त्रीचित्रों का उपयोग स्त्री का अपमान है।

२८५७ मैं मानता हूं कि स्त्री में जिस काम को करने की क्षमता है, जो काम उसके या परिवार और समाज के हितों का विघटन करने वाला नहीं है तथा जिस काम के प्रति उसका उत्साह है, उस काम में इस दृष्टि से कोई बाधा नहीं होनी चाहिए कि उसे करने वाली एक स्त्री है।

२८५८ मातृत्व के महान् गौरव से महनीय, कोमलता, दयालुता आदि अनेक गुणों की स्वामिनी स्त्री पता नही भीतर के किस कोने से खाली है, जिसे भरने के लिए उसे ऊपर की टिपटॉप से गुजरना पड़ता है।

२८५९ स्त्री समाज के विवेक की प्रसुप्तावस्था समाज के लिए जहां भयंकर अभिशाप होती है, वहां विवेक-जागरण की अवस्था एक महनीय वरदान है।

२८६० स्त्री धार्मिक आस्था का जीवन्त प्रतीक है।

२८६१ फैशनपरस्ती, दिखावा और विलासिता आदि दुर्गुण स्त्री समाज के अन्तर् सौन्दर्य को ढकने वाले आवरण है।

२८६२ स्त्रियों को केवल जन्म ही नहीं, संबोध भी देना है।

२८६३ पूरे विश्व के लिए अनेक दृष्टियों से उपयोगी घटक का नाम है—स्त्री। दुनिया के किसी भी देश में स्त्री के बिना जीवन की पूर्णता नहीं है।

२८६४ यदि स्त्रीजाति वैयक्तिक और सामूहिक रूप में मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था की नई मशाल जला सके तो विश्व में एक नए दर्शन और नये युग का सूत्रपात हो सकता है।

२८६५ सुबह से शाम तक स्त्री का व्यक्तित्व कई आयामों में फैल जाता है—कभी वह सुघड़ गृहणी के रूप में उपस्थित होती है तो कभी पूरे घर की स्वामिनी वन जाती है। वगीचे में पौधों को पानी देते समय वह मालिन का रूप धारण करती है तो रसोईघर में अपनी पाक-कला का परिचय देती है। कपड़ों का ढेर सामने रखकर जब वह धुलाई का काम शुरू करती है तो उसकी तुलना धोबिन से की जा सकती है तो वच्चों को होम वर्क कराते समय वह एक ट्यूटर की भूमिका में पहुंच जाती है। कभी सीना-पिरोना, कभी बुनाई करना, कभी झाड़ू बुहारी करना तो कभी वच्चों की परवरिश में खो जाना।

२८६६ कौन घर कितना साफ-सुथरा और सुरूचिपूर्ण है? घर में धर्म और संस्कृति का प्रतिविम्व है या नहीं ? उपयोग की वस्तुऐं व्यवस्थित हैं या नही ? संग्रहीत खाद्य वस्तुओं में जीव उपजते हैं या नहीं ? घर में धर्मोपासना के लिये कोई स्थान है या नहीं ? इन सब प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में स्त्री की सुघड़ता या फूहड़ता का दर्शन हो जाता है।

२८६७ स्त्री में सृजन की अद्‌भुत क्षमता है। उस क्षमता का उपयोग विश्वशांति या समस्याओं के समाधान की दिशा में किया जाए तो वह सही अर्थ मे विश्व की निर्मात्री और संरक्षिका होने का सार्थक गौरव प्राप्त कर सकती है।

२८६८ स्त्री कुछ विशिष्ट लब्धियों से वंचित भले ही रहे, पर आत्म-शक्ति के विरोधक तत्त्वों को पराजित कर अन्तहीन शक्ति का वरण करने से उसे कोई नहीं रोक सकता।

२८६९ स्त्री का शरीर ही नहीं, मन भी कोमल होता है।

२८७० अपने घर में अनेक महत्त्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह करनेवाली स्त्री, घर से बाहर के कार्य-क्षेत्रों में कमजोर साबित होगी, ऐसा मैं नहीं मानता।

२८७१ अपना पूरा जीवन विश्व-कल्याण के लिए निछावर करने वाली स्त्री के प्रति विश्व कितना उपेक्षित है, यह भी चिन्तन का एक विषय है।

२८७२ महिलाओं के लिए खासतौर से सिगरेट बनाना और उसे विज्ञापनी चमक में जोड़ना स्त्री समाज को पतन के गर्त में धकेलना है।

२८७३ स्त्री समाज प्रारम्भ से ही अपने बच्चों की जटिल हो रही समस्याओं के सामने घुटने न टेककर उनसे जूझने का दिशा-बोध देता रहेगा तो कम से कम विश्व की आने वाली पीढ़ी हिंसा, भोगवादी मनोवृत्ति और मादक तथा नशीले पदार्थों से दूर रहकर एक नयी जीवन शैली को विकसित कर सकेगी।

२८७४ जब तक बहिनें शिक्षित नहीं होंगी, परिवार नहीं सुधरेगा।

२८७५ स्त्री के दुर्गा बनने का मतलब हिंसा या आंतक फैलाने से नहीं, शक्ति को संजोकर रखने से है।

२८७६ दहेज जैसी सामाजिक कुरीतियों से लड़ने तथा उनसे मुक्त होकर आत्मनिर्भर होने का अर्थ यह नहीं कि बहिनें सामाजिक शिष्टता की सीमा का अतिक्रमण कर दें।

२८७७ सौन्दर्य की अन्धी दौड़ में बहकर नारी अपने आचार-विचार और संस्कृति के वैशिष्ट्य को कहां तक सुरक्षित रख सकी है, यह उसके सामने ज्वलन्त प्रश्न है।

२८७८ ममता और समता की प्रतीक स्त्री का जीवन-चरित्र कितना जटिल और विवादास्पद है, समझना कठिन है।

२८७९ स्त्री को अपने व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए चारित्रिक सौंदर्य को निखारना होगा, आत्मविश्वास को बढ़ाना होगा, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता का अनुभव करना होगा, चिंतन एवं अभिव्यक्ति को नया परिवेश देना होगा, स्वाभिमान को जगाना होगा, निरभिमानता का विकास करना होगा, अनासक्ति का अभ्यास करके संग्रहवृत्ति को नियंत्रित करना होगा, प्रदर्शनप्रियता से ऊपर उठकर आत्माभिमुख बनना होगा, अनाग्रही वृत्ति को विकसित करना होगा तथा सहिष्णुता, मृदुता एवं विनम्रता को आत्मसात् करना होगा।

स्त्री : पुरुष

२८८० कोई स्त्री पुरुष के साथ बराबरी का दावा करे, समानाधिकार की मांग करे और पुरुष की नकल करे, इसका औचित्य समझ में नही आता।

२८८१ यदि एक दिन भी पुरुष नारी का काम अपने जिम्मे ले ले तो शायद वह बीच में ही छोड़कर भाग जाए।

२८८२ पुरुष अपने लिए जीता है और स्त्री दूसरों के लिए जीती है। पुरुष अपने व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देता है और स्त्री दूसरों के व्यक्तित्व को सरजती है, संवारती है। स्त्री और पुरुष की प्रकृति का यह मूलभूत अन्तर उनके विचारो और व्यवहारो में तैरता रहता है।

२८८३ जब तक स्त्री को पुरुष से न्यून माना जाएगा, तब तक उसको सभ्यता की आहट भी सुनाई नहीं देगी और आने वाली सदी में स्त्री और पुरुष के बीच सन्तुलन की स्थापना कैसे होगी ?

२८८४ स्त्री के लिए पतिव्रता होना जरूरी है तो पुरुष के लिए पत्नी-व्रत होना आवश्यक है। इससे समाज की सुरक्षा होगी।

२८८५ स्त्री और पुरुष ये दोनों भिन्न रचनाएं हैं। इनका संक्रमण विकास का लक्षण नही हो सकता। दोनों की भलाई इसी में है कि स्त्री पुरुष बनने का प्रयत्न न करे और पुरुष स्त्री बनने का प्रयत्न न करे।

२८८६ जब-जब पुरुषों में नैतिक पतन की स्थिति आती है, तब-तब स्त्री जाति ही उसे सहारा देकर नैतिकता की ओर अग्रसर करती है।

२८८७ आत्मोपलब्धि के जितने अधिकार एक पुरुष को प्राप्त है, उतने ही एक स्त्री को प्राप्त है।

२८८८ पुरुषवर्ग स्त्री को देह रूप में स्वीकार करता है किन्तु वह उसके सामने मस्तिष्क बनकर अपनी क्षमताओं का परिचय दे, तभी वह पुरुषों को चुनौती दे सकती है।

२८८९ जब तक पुरुष राम नहीं बनेगा, तब तक स्त्री यदि सीता भी बनेगी तो उसका हरण तो वैसे ही होगा।

२८९० 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'—स्त्री अपने जीवन में कभी स्वतंत्रता नही पा सकती। इस प्रकार की बातें प्रचलित कर पुरुषवर्ग ने स्त्री समाज के मनोबल को कमजोर करने का प्रयत्न किया है।

२८९१ स्त्रिओं की ममता की छाया में पलने वाला पुरुषवर्ग यदि उनसे करुणा या अहिंसा की दृष्टि प्राप्त कर ले तो उसकी कार्यपद्धति में यथेष्ट बदलाव आ सकता है।

२८९२ मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूं जब स्त्रीसमाज का पर्याप्त विकास देखकर पुरुषवर्ग उनका अनुकरण करेगा।

२८९३ सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक विरासत और घर की व्यवस्थाओं के संरक्षण और प्रवर्धन मे स्त्री का जो योगदान है, पुरुष को वहां तक पहुंचने मे बहुत कुछ बलिदान करना पड़ेगा।

स्त्री-विकास

२८९४ स्त्री-विकास के प्रारम्भिक बिन्दु ये हो सकते है—

१. स्वत्व की पहचान
२. लक्ष्य निर्धारण की क्षमता
३. मौलिक चिंतन की क्षमता
४. जागरूक श्रद्धा का विकास
५. आदर्श चरित्र का निर्माण
६. सास्कृतिक मूल्यो का विस्तार

२८९५ अर्थहीन परम्पराओ और अंधविश्वासों की पकड़ स्त्री के विकास मे बाधक है, यह सच है पर इसका अर्थ यह नही है कि प्रगतिशीलता के नाम पर परम्परा मात्र को उखाड़ कर फेक दिया जाए।

२८९६ सिद्धांत की भूमिका पर स्त्रीजाति को गुणात्मकता और मूल्यवत्ता स्वीकृत करने पर भी व्यवहार के धरातल पर उसका उचित मूल्यांकन नही हुआ। इसीलिए स्त्री जाति का विकास नही हो पाया।

२८९७ कृत्रिम लज्जा और भय की काली चादर को उतारे बिना स्त्री का विकास संभव नहीं है।

२८९८ स्त्री की नैसर्गिक शक्ति को जागृत होने का अवसर मिल जाए तो उसके आश्चर्यजनक परिणाम आ सकते हैं।

स्थान-परिवर्तन

२८९९ स्थान बदलना समाधान नहीं है। समाधान है—जीवन की दिशा बदलना, मनोवृत्ति को परिष्कृत करना।

स्थितप्रज्ञ

२९०० राग-द्वेष का रंगीन चश्मा उतारकर ही व्यक्ति स्थितप्रज्ञ वन सकता है।

२९०१ स्थितप्रज्ञ होने का अर्थ है—जीवन में आने वाले कष्टों को हंस-हंस कर सहना, संतुलन न खोना।

२९०२ स्थितप्रज्ञ की यह अटल आस्था होती है कि जिस प्रकार सोना कसौटी पर कसा जाने के वाद निखार पाता है, वैसे ही संघर्षो की आग में तपकर सत्य निखरता है।

२९०३ जो व्यक्ति हर किसी स्थिति में अपने को संतुष्ट और प्रसन्न रख सके, वही स्थितप्रज्ञ हो सकता है।

स्थितप्रज्ञता

२९०४ किसी भी श्रेष्ठ साधना में तल्लीन हो जाना, तन्मय हो जाना ही स्थितप्रज्ञता है।

२९०५ स्थितप्रज्ञता की स्थिति में पहुंचा जा सकता है, इस आस्था के साथ अभ्यास को वढ़ाया जाये तो सफलता निश्चित है।

२९०६ स्थितप्रज्ञता को उपलब्ध किए बिना सुख और शांति को उपलब्ध करने के हमारे सारे प्रयत्न निष्फल होंगे।

२९०७ अप्रमत्तता ही स्थितप्रज्ञता है।

२९०८ स्थितप्रज्ञता उसी मनुष्य में उतर सकती है, जिसका जीवन पवित्र और उच्च हो।

२६०६ अशान्त वातावरण में भी अपने आपको शान्त रखना स्थितप्रज्ञता का लक्षण है।

२६१० ज्ञानपूर्वक होने वाला सम्यक् आचरण ही व्यक्ति को स्थितप्रज्ञता की दिशा में अग्रसर कर सकता है।

स्थितात्मा

२६११ जिस दिन, जिस क्षण हमारी आत्मशक्ति पूर्ण रूप से अनावृत हो जाती है, अनन्त वीर्य प्रकट हो जाता है, हमें स्थितात्मा बनते समय नहीं लगता।

२६१२ स्थितात्मा वह होता है, जो सत्कार-सम्मान को छोड़ता चला जाए।

स्थितिपालक

२६१३ जो स्थितिपालक होता है, उसे रूपान्तरण कभी नहीं सुहाता।

स्थिर

२६१४ स्थिर वही पदार्थ या व्यक्ति रह सकता है, जो परिवर्तन को सह सकता है।

स्थिरता

२६१५ स्थिरता के बिना विशेष साधना की तो बात ही क्या, सामान्य काम भी उचित ढंग से सम्पादित नहीं किए जा सकते।

२६१६ स्थिर विचारों की अभिव्यक्ति वक्ता और श्रोता—दोनों के लिए कार्यकर बन सकती है।

२६१७ एक निश्चित लक्ष्य का स्थिरीकरण किए बिना चारों दिशाओं में दौड़धूप करने से किसी अभिलषित अर्थ की सिद्धि नही हो सकती।

२६१८ वायु के झोंको से टूटकर गिरने वाला फूल पैरों से रौदा जाता है, कुचला जाता है। जो टहनी पर टिका रहता है, वह देवता की पूजा में चढ़ता है, सम्मान पाता है।

२९३९ जाने के बाद जो अपनी अशेष स्मृतियों को छोड़ जाते है, उनका व्यक्तित्व स्थायी बन जाता है।

स्मृति और कल्पना

२९४० अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पना व्यक्ति को उलझा देती है।

स्याद्वाद

२९४१ केवल एक धर्म का निरूपण किसी भी पदार्थ का समग्रता से अवबोध नहीं करा सकता, इस दुविधा को निरस्त करने वाली प्रतिपादन शैली का नाम है—स्याद्वाद।

२९४२ स्याद्वाद से व्यवहार के धरातल पर उगी अनेक विसंगतियों को दूर किया जा सकता है।

२९४३ सत्यशोध के लिए जिस विनम्रता की अपेक्षा है, वह स्याद्वाद में सहज प्राप्त है।

२९४४ यदि मानव स्याद्वाद के हार्द को समझ ले तो न केवल परिवार का बिखराव ही रुक सकता है, अपितु समाज व राजनीति में भी एक नया मोड़ आ सकता है।

२९४५ अनाबाध आस्वाद युत, सरल वाद संवाद।
हृदयाह्लाद विषादहर, वीरवाद स्याद्वाद॥

२९४६ जिस तत्त्व के कारण शेर और बकरी एक घाट पर पानी पी सकते हैं, वह तत्त्व स्याद्वाद है।

२९४७ हो विचारों का अनाग्रह, स्वाद यह स्याद्वाद का।
और 'तुलसी' आचरण में, अन्त हो उन्माद का॥

२९४८ किस प्रसंग में किस शब्द का कौन सा अर्थ ग्राह्य है, यह निर्धारण स्याद्वाद के द्वारा होता है।

२९४९ जिस स्याद्वाद में विश्व भर के मतभेदो का समन्वय करने की तथा उन्हे एक मंच पर लाने की क्षमता है, उसके अनुयायी यदि पार्थक्य में लगे हुए हों तो यह आश्चर्य ही माना जाएगा।

२९५० स्याच्छब्दाङ्कितसप्तभङ्गसलिलव्यूहैर्गभीरोदरो,
वस्त्वंशप्रतिपादिसन्नयकलाकल्लोलमालाकुलः ।
संविद्रत्नसमुच्चयेन भरितः सत्तर्कफेनावृतः,
सोऽयं कस्य मुदे न सान्द्रमहिमा स्याद्वादपाथोनिधिः ॥
('स्यात्' शब्द के लक्षण वाले सात भंगों के जलसमूह से जिसका उदर गहरा हो गया है, वस्तु के एक अंश का प्रतिपादन करने वाले सम्यक् नयों की तरंगों से जो तरंगित है, ज्ञानरूपी रत्नो से जो भरा हुआ है और जिसमें तर्क के बुद्बुदे उठ रहे है, ऐसा वह महामहिम स्याद्वाद समुद्र किसके लिए आह्लाददायी नही है ?)

२९५१ यस्यागाधजलाश्रयैर्जलदतां संयान्ति सन्तो जना;
विष्वग् विभ्रमघर्मघृष्टवपुषां संशोष्य तृष्णां नृणाम् ।
वाक्सन्दर्भसरित्प्रवाहनिकरैः संवर्धयन्त्येव यत्,
सोऽयं कस्य मुदे न सान्द्रमहिमा स्याद्वादपाथोनिधिः ॥
(जिसके अगाध जल का आश्रय पाकर विद्वान् लोग जलद (ज्ञानरूपी वर्षा करने वाले बादल) बन जाते हैं और वे चारो ओर भ्रांतियो के ताप से संतप्त मनुष्यों की तृष्णा को शांत कर वाङ्मय रूपी नदी के प्रवाहों से फिर उसी समुद्र की वृद्धि करते हैं, ऐसा वह महामहिम स्याद्वाद समुद्र किसके लिए आह्लाददायी नही है ?)

२९५२ स्याद्वाद 'यही है' इस एकान्तिक पकड़ के बदले 'यह भी है' इस आपेक्षिक तथ्य को सामने रखता है ।

२९५३ स्याद्वाद एक अमोघ अस्त्र है, उसका वार कभी खाली नही जाता ।

२९५४ स्याद्वाद अपेक्षा भेद से वस्तु-प्रतिपादन में उभरने वाले विरोध का परिहार कर वक्ता और श्रोता—दोनों का मार्ग प्रशस्त कर देता है ।

२९५५ एकता में अनेकता और अनेकता में एकता प्रस्थापित करना स्याद्वाद की प्रथम स्वीकृति है ।

२९५६ स्याद्वाद कहता है कि उस व्यक्ति की बात सही है, जो दूसरों की बात को सही मानता है ।

२९५७ यह भी हो सकता है, वह भी हो सकता है—यह अवधारणा स्याद्वाद के सही अर्थ को नहीं समझ पाने का परिणाम है ।

२९५८ स्याद्वाद एक समुद्र है। उसमें सारे वाद विलीन हो सकते हैं।

२९५९ समन्वयमूलक नीति न हो तो स्याद्वाद का सिद्धांत समझ में नही आ सकता।

२९६० सापेक्ष सत्य को सावधारण स्वीकार करना ही स्याद्वाद है।

२९६१ व्यक्तिगत और सामूहिक—अनेक समस्याओं का समाधान स्याद्वाद में सन्निहित है।

स्याद्वादी

२९६२ स्याद्वादी सरलाशयोऽनवरतं शान्ताग्रहो मोदते,
स्वात्ताकर्षणतत्परस्तदितरः प्राप्नोति खिन्नां गतिम्।
तथ्यं तत्त्वमहो कदाग्रहपरैराप्तं क्वचित् किं श्रुतं,
चेत्त्वं तत्त्वरुचिर्विभेषि भवतः स्याद्वादवादं श्रयः॥

(स्याद्वादी आग्रहहीन और सरलहृदय होता है और सदा प्रसन्न रहता है। जो स्याद्वादी नही होता, वह अपनी बात पर अड़ने वाला होता है। जब उसकी बात नही मानी जाती है तो वह अप्रसन्न होता है और खेद करता है। यदि तुम तत्त्व-गवेषक हो और संसारभ्रमण से मुक्त होना चाहते हो तो स्याद्वाद का आश्रय लो, क्योकि कोई भी हठी व्यक्ति तत्त्व प्राप्त कर सका हो, ऐसी बात क्या कहीं सुनी है?)

२९६३ गृहीत्वैकां रज्जु यदुभयत आकर्षति युगं,
द्विधा स्याच्चेन्मध्यात् पतनमुभयोर्निश्चितमतः।
श्लथीकुर्याच्चैको झगिति निपतेत् कर्षकनर-
स्तथैवं स्याद्वादी सततमविवादी विजयते॥

(एक रस्सी को यदि दो पुरुष दो दिशाओ मे खीचते हो तो रस्सी बीच से टूट जाती है और खीचने वाले दोनो व्यक्ति गिर जाते है। यदि उनमे से एक रस्सी को ढीली कर देता है तो वह नही गिरता, खींचने वाला गिर जाता है। इस तत्त्व को समझकर स्याद्वादी विवाद मे नही पड़ता और सदा अविवादी रहकर समन्वय द्वारा विजय प्राप्त कर लेता है।)

२९६४ स्याद्वाद अहिंसा का ही एक प्रकार है। जो अहिंसक हो और स्याद्वादी न हो, यह उतना ही असंभव है कि कोई व्यक्ति हिंसक हो और शुष्क तर्कवादी न हो।

स्वच्छंद

२६६५ जो व्यक्ति आत्मानुशासन और सविधान—इन दोनो व्यवस्थाओं को अस्वीकार कर देते है, वे स्वतंत्र तो नही, स्वच्छंद हो जाते हैं।

२६६६ स्वच्छन्द व्यक्ति लोकतंत्र के अश्वों को इतना उच्छृखल बना देते है कि वे कभी भी सही रास्ते पर सही ढंग से चल ही नहीं पाते।

२६६७ स्वच्छंद व्यक्ति अहिंसा के सिद्धान्त का सम्यक् पालन नही कर सकता।

२६६८ यदि व्यक्ति में स्वच्छंद रहने का मनोभाव दृढ हो जाए तो उसमें सौहार्द के भाव कैसे टिक सकते है ?

२६६९ स्वच्छंद व्यक्ति कभी निश्चिन्त नही रह सकता।

स्वच्छंदता

२६७० अनुशासनहीनता को बर्दास्त करना स्वच्छंदता को बढावा देना है।

२६७१ स्वतन्त्रता आत्मानुशासन का फलित है और स्वच्छन्दता अनुशासनहीनता का।

२६७२ चिन्तन और आचरण की स्वच्छंदता ने लोगों को अपनी संस्कृति, सभ्यता एवं नैतिक मूल्यों से दूर धकेल दिया है।

३६७३ स्वच्छंदता असंयम की पोषक है।

२६७४ स्वच्छन्दता स्वतन्त्रता का शत्रु है। कभी कभी यह परतंत्रता से भी अधिक भयावह बन जाती है।

२६७५ स्वच्छन्दता और मर्यादा का कोई मेल नहीं है।

२६७६ स्वच्छंदता मोक्ष-निरोधक तत्त्व है।

२६७७ मनोवैज्ञानिकी वाढमनुशासनपद्धतिः।
तदा स्वच्छंदता नैव वृद्धि कदाचिदृच्छति ॥
(जहा मनोवैज्ञानिक पद्धति से अनुशासन किया जाता है, वहा स्वच्छंदता कभी नही पनपती।)

स्वच्छता

२९७८ गरीबी और स्वच्छता का कोई विरोध नहीं है।

२९७९ मुख की स्वच्छता का अर्थ निंदा, परापवाद एवं दुर्वचनों को न बोलना है।

२९८० स्वच्छता अहिंसा की साधना के लिए वहुत उपयोगी है।

२९८१ सबसे बड़ी स्वच्छता है—अपनी आत्मा का परिमार्जन।

स्वतंत्र

२९८२ स्वतंत्र का अर्थ होता है—अपने अनुशासन द्वारा संचालित जीवन-यात्रा।

२९८३ हर आदमी विष या अमृत खाने में जितना स्वतंत्र है, उतना उनके परिणाम भोगने मे स्वतंत्र नहीं है।

२९८४ यदि व्यक्ति स्वतंत्र है तो किसी क्रिया की प्रतिक्रिया नहीं करेगा। वह एक क्षण में प्रसन्न और एक क्षण में नाराज नहीं होगा, एक क्षण में विरक्त और एक क्षण में वासना का दास नहीं बनेगा।

२९८५ जब तक व्यक्ति अनैतिकता और भ्रष्टाचार जैसे दुर्गुणों से अपने को मुक्त नहीं कर लेता है, तब तक भले ही कहलाने को वह स्वतंत्र हो पर वास्तविक स्वतंत्रता का वहां लेश भी नहीं है।

२९८६ स्वतंत्र वह है, जो न्याय के पीछे चलता है।

२९८७ स्वतंत्र चेतना वाला व्यक्ति निश्चित ही चरित्रवान् बनेगा।

२९८८ स्वतंत्र वह है, जो स्वार्थ के पीछे नहीं चलता।

२९८९ एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सापेक्ष रहकर ही स्वतंत्र रह सकता है।

२९९० राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्र का अर्थ होता है—राष्ट्रीय संविधान द्वारा संचालित जीवन-यात्रा।

२९९१ जो व्यक्ति या वर्ग स्वतंत्ररूप से चिन्तन नही कर सकता, वह कोई उल्लेखनीय कार्य नही कर सकता।

२९९२ जो सीमा करना नहीं जानता, वह स्वतंत्र नहीं है।

२९९३ जो वर्तमान से कट जाता है, वह शीघ्र ही गुलाम बन जाता है, जो वर्तमान के साथ चलता है, वह स्वतंत्र रह सकता है।

२९९४ श्रद्धा अनावश्यक नहीं है, पर स्वतंत्र चिंतन के बिना वह अज्ञान में बदल जाती है।

२९९५ बिना स्वतंत्र चिंतन किए शांति सम्भव नहीं है।

२९९६ बलवती भावना, प्रशस्त इच्छा या जागृत विवेक से जो काम होता है, वह मनुष्य की स्वतंत्र चेतना की प्रेरणा है।

स्वतंत्रता

२९९७ स्व की अनुभूति ही सच्ची स्वतंत्रता है।

२९९८ परतंत्रता का सही बोध और स्वतंत्र बनने की गहरी तड़प— ये दोनों बातें जब तक नहीं होती, स्वतंत्रता नहीं मिल पाती।

२९९९ स्वतंत्रता में पर-नियंत्रण का अभाव होता है न कि स्वच्छंदता और उच्छृंखलता का आविर्भाव।

३००० धर्म के विकास का नाम ही स्वतंत्रता है।

३००१ सच्ची स्वतंत्रता दुर्गुणों की दासता से मुक्ति है।

३००२ स्वतंत्रता का बीज स्वतंत्रता के रक्त से ही सिंचित होकर पनपता है।

३००३ स्वतंत्र, मुक्त आकाश में विहरण करने वाला पक्षी भी स्वर्ण के पिंजरे को कैद मानता है, भले ही उसे खाने को मेवा मिष्ठान्न ही क्यों न मिले।

३००४ पुरुषार्थ और उसका परिणाम यदि किसी दूसरे के अधीन हो तो हमारे स्वातंत्र्य का कोई मूल्य नहीं रहता।

३००५ पुरा स्वातंत्र्यमिच्छंति, ते नार्हन्ति स्वतंत्रताम्।
पुरानुशास्तिमिच्छंति, तेऽर्हन्ति सुस्वतंत्रताम्॥

(जो प्रारम्भ में स्वतंत्र बनना चाहते हैं, वे कभी भी स्वतंत्रता के योग्य नहीं बन सकते। जो प्रारम्भ मे अनुशासन की इच्छा रखते हैं, वे बाद मे स्वतंत्र होने योग्य बन जाते हैं।)

३००६ व्यक्तिगत और सामूहिकरूप से पनपने वाले दोषों का अपहार किए बिना स्वतंत्रता में सुख की अनुभूति नहीं हो सकती।

३००७ स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिकों को निश्चिन्तता और सुरक्षा भी प्राप्त न हो तो स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या ?

३००८ स्वतत्रता की पहली अर्हता है—आवेश पर नियंत्रण और स्वार्थ का सीमाकरण।

३००९ अपनी स्वतंत्रता का अनियंत्रित उपभोग करके अधिक पैसा संग्रह करने से वृत्तियां निरंकुश हो जाती हैं।

३०१० स्वतंत्रता मनुष्य का अंतिम साध्य है, पर सामाजिक जीवन में वह असीम नहीं हो सकती।

३०११ विकास के साथ दायित्व की भावना आये, तभी स्वतंत्रता का मूलस्वरूप निखर सकता है।

३०१२ लोकमान्य तिलक ने कहा—स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है, यह बात सही है, पर इसको पाना और सुरक्षित रखना बड़ी टेढ़ी खीर है।

३०१३ यदि विदेशी हुकूमत चले जाने मात्र से स्वतन्त्रता मिलती तो आज जन-जीवन में जुआ, चोरी भ्रष्टाचार और रिश्वत-खोरी जैसे दुर्गुणों की गुलामी नहीं होती।

३०१४ हृदयपरिवर्तन द्वारा प्राप्त स्वतंत्रता ही वास्तविक अर्थ में स्वतंत्रता है।

३०१५ स्वतंत्रता की चाह उसी व्यक्ति की सच्ची हो सकती है, जो दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा नहीं डालता।

३०१६ श्रमशील और व्यसनमुक्त नागरिक ही स्वतंत्रता का वास्तविक आनंद प्राप्त कर सकता है।

३०१७ परतंत्र कभी तुष्ट नही हो सकता। स्वतंत्रता ही संतोष प्रदान करती है।

३०१८ संयम सबसे बड़ी स्वतंत्रता है।

३०१९ बंधन के बाद जो स्वतंत्रता मिलती है, वह अधिक उल्लास देने वाली होती है।

३०२० व्यक्तिगत स्वतंत्रता की समाप्ति कभी-कभी मौत से भी अधिक भयंकर होती है।

३०२१ स्वतंत्रता का मूल्य स्वयं सत्य है।

३०२२ स्वतंत्रता का मौलिक अर्थ है—नियमानुवर्तिता, जो राजनैतिक और आध्यात्मिक—दोनों क्षेत्रों में समान रूप से लागू है।

३०२३ आत्मा जब परिस्थिति से पराजित नही होती, तब उसमें स्वतंत्रता का विकास होता है।

३०२४ अध्यात्म का अभाव, अर्थ की प्रधानता और मौलिक चिंतन की कमी—इन तीन बिंदुओं पर ध्यान केन्द्रित किया जाए तो देश की अखंडता और स्वतंत्रता सार्थक हो सकती है तथा उसके भविष्य को स्थिरता दी जा सकती है।

३०२५ स्वतंत्रता का दीप व्यक्ति-स्वातंत्र्य की वलिवेदी पर जले, तभी शांतिरेखाए विद्योतित होंगी।

३०२६ आत्मिक तुष्टि के लिए स्वतंत्रता अनिवार्य है।

३०२७ जिस व्यक्ति की चेतना जितनी विकसित होती है, वह स्वतंत्रता की उपलब्धि के लिए उतनी ही तीव्रता से प्रयत्न करता है।

३०२८ स्वतन्त्रता अहिंसा की निष्पत्ति है।

३०२९ योग्यता के बिना मिली हुई स्वतंत्रता भी अहितकर हो जाती है।

३०३० मनुष्य को जीने के लिए श्वास की जितनी अपेक्षा है, एक समाज के लिए पारस्परिक विश्वास की जितनी अपेक्षा है उससे भी अधिक आवश्यक है देश के विकास हेतु राष्ट्र की स्वतत्र चेतना का विकास।

३०३१ आंतरिक स्वतंत्रता के विना वाहरी स्वतंत्रता पूर्णरूप से सफल नही हो सकती।

३०३२ असमानता, अस्पृश्यता, जातीयता, साम्प्रदायिकता का भेदभाव मिटे बिना स्वतंत्रता का पूर्ण लाभ मिलना कठिन है।

३०३३ स्वतंत्रता की दिशा मे उठा एक-एक पग भारत को पूर्ण स्वतंत्रता की मंजिल तक पहुंचा देगा।

३०३४ स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखल मनोवृत्तियों को प्रोत्साहन देना स्वतंत्रता का अवमूल्यन करना है।

स्वतंत्रता दिवस

३०३५ मैं स्वतंत्रता दिवस के पर्व को आत्ममंथन का पर्व मानता हूं।

स्वतंत्र समाज

३०३६ जहां कानून नही, किन्तु स्वेच्छा से शोषण की वृत्ति छोड़ी जाती हो, वह समाज स्वतंत्र समाज है।

३०३७ स्वतंत्र समाज का अर्थ विदेशी दासता से मुक्त होना ही नहीं है, अपितु आत्मानुशासन का विकास ही स्वतंत्र समाज का दर्पण बन सकता है।

स्वत्व

३०३८ जिस व्यक्ति के स्वत्व की सीमाएं जितनी बड़ी होंगी, वह उतना ही दूसरों के स्वत्व का अपहरण करता रहेगा।

स्वदर्शन

३०३९ स्वयं को साधने के लिए जागरूकतापूर्वक स्वदर्शन आवश्यक है।

स्वधर्म

३०४० व्यक्ति समाज व राष्ट्र के लिए समस्या तभी बनता है, जब वह स्वधर्म से च्युत हो जाता है। स्वधर्म से मेरा तात्पर्य साम्प्रदायिक धर्म से नही, अपितु कर्त्तव्य से है।

स्वनिर्माण

३०४१ स्वनिर्माण से बढ़कर कोई दूसरा कार्य नहीं हो सकता और निर्माण का इससे सरल कोई रास्ता नहीं हो सकता।

स्वप्न

३०४२ औकात से अधिक बड़े सपने देखना. पूरे मन से पुरुषार्थ न करना और सहायक सामग्री का योग न मिलना आदि ऐसे कारण हैं, जिनसे सपनों को आकार नही मिल पाता।

३०४३ स्वप्न-जगत् में खडा व्यक्ति यथार्थ को कैसे समझ सकता है ?

३०४४ स्वप्न वैसा हो देखना चाहिए, जिसके अनुरूप पुरुषार्थ किया जा सके।

३०४५ जीवन को विशिष्ट बनाने के लिए यथार्थ की धरती पर चलना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है स्वप्नलोक में विहार करना।

३०४६ कोई भी स्वप्न तब तक साकार नही हो सकता जब तक उसकी पूर्ति हेतु व्यक्ति पूर्णनिष्ठा से उसमें जुट न जाए।

स्वभाव

३०४७ स्वभाव वह होता है, जिसके बिना जीवन टिके नही। जैसे क्रोध स्वभाव नहीं है क्योंकि उसके बिना जोया जा सकता है।

३०४८ स्वभाव कोई लक्ष्मणरेखा नही है, जो इधर उधर नहीं हो सकती या बदल नही सकती।

३०४९ मनुष्य के स्वभाव की सर्जरी की जाए तो बहुत बड़ा चमत्कार घटित हो सकता है।

३०५० मट्ठे में कितना ही दूध डालो, मट्ठा ही बनता चला जाएगा, दूध नही बनेगा।

स्वभाव परिवर्तन

३०५१ यदि स्वभाव मे परिवर्तन होता ही नही तो स्वाध्याय, मौन, क्षमा आदि साधना के विविध प्रयोग निरर्थक हो जाते।

३०५२ मेरा यह निश्चित अभिमत है कि यदि किसी का स्वभाव परिवर्तन करना है तो वह उपदेश द्वारा नही, हृदयपरिवर्तन से ही संभव है।

३०५३ दृढता और संकल्प के विना स्वभाव-परिवर्तन असंभव है।

३०५४ पहाड़ को गड्ढे में बदला जा सकता है और गड्ढे को पहाड़ में परिवर्तित किया जा सकता है, किन्तु आग्रही मनुष्य के स्वभाव को बदलना आसान नही होता।

स्वभावरमण

३०५५ स्वभावरमण का एक सूत्र है—पदार्थ-प्रतिवद्धता का अभाव।

३०५६ जो व्यक्ति अपने स्वभाव में रमण कर लेता है, वह धर्म की शरण पा लेता है।

३०५७ स्वभाव में आना शाश्वत सुख मे आना है।

३०५८ स्वभावरमण बहुत वड़ा विज्ञान है और वहुत वड़ा स्वास्थ्य भी।

३०५९ जिसका दृष्टिकोण सम्यक होता है, वह सदैव स्वभावरमण कर सकता है।

स्वयंबुद्ध

३०६० सूरज पूर्वदिशा से पश्चिम दिशा में भले ही उग जाए, पर स्वयंबुद्ध व्यक्तियों का आत्मानुशासन कभी शिथिल या क्षीण नहीं होता।

३०६१ बिना किसी बाह्य निमित्त से स्वयं अपनी आत्म-उज्ज्वलता के द्वारा बोधि प्राप्त करने वाला स्वयंबुद्ध होता है।

स्वराज्य

३०६२ एक व्यक्ति अपनी नौमंजिली इमारत बनाकर स्वर्ग की कल्पना करता है और उसके पड़ोसी को वर्षा से बचने के लिए फूटी झोंपड़ी भी नहीं है। सड़कों पर लोगों को सोते तथा जूठा खाते देख मेरा हृदय कांप उठता है कि क्या गांधीजी के स्वराज्य की यही कल्पना थी ?

स्वर्ग

३०६३ यदि वाणी की अहिंसानिष्ठता और सत्यनिष्ठा व्यवहार में आ जाए तो स्वयं स्वर्ग धरती पर उतर आए।

३०६४ जो व्यक्ति मन को नियन्त्रित करने में समर्थ है, उनके लिए संसार ही स्वर्ग है।

३०६५ मंदिर में चले जाने या महाराज के चरण छू लेने से स्वर्ग मिल जाएगा, यह आशा कभी नही करनी चाहिए।

३०६६ अदृश्य स्वर्ग की कल्पना को त्यागकर इस धरती पर ही स्वर्ग उतारा जा सकता है।

३०६७ तुम प्रतिकूलता को सहन कर लोगे तो तुम्हारा घर स्वर्ग बन जाएगा।

स्वर्ग और नरक

३०६८ जीवन का विकास स्वर्ग है और जीवन का ह्रास नरक।

३०६९ व्यक्ति की धार्मिक एवं नैतिकवृत्ति स्वर्ग है और पाशविक वृत्ति नरक।

३०७० हमारे जीवन में अनेक बार ऐसे प्रसंग उपस्थित होते रहते है, जब हमें स्वर्ग और नरक की बहुत निकटता से अनुभूति होती है।

३०७१ संसार उनके लिए स्वर्ग है, जो अपने ऊपर निर्भर रहते है और उनके लिए नरक है, जो परमुखापेक्षी है।

३०७२ स्थान-विशेष मे स्थित स्वर्ग और नरक मे किसी की आस्था हो या नही, मनुष्य के जीवन-व्यवहार, आचार और उसकी वृत्तियों में उनका आभास अवश्य मिल जाता है।

३०७३ स्वर्ग के प्रलोभन से धर्म करना पाप है और नरक के भय से धर्म करना भी उचित नहीं।

३०७४ स्वर्ग और नरक यदि किसी को देखना हो तो पहले अपने घर को देखो।

३०७५ जब तू क्रोध अहङ्कार, माया, लोभ, वासना, परिग्रह, ईर्ष्या में चला जाता है, तब नरक का दरवाजा स्वतः खुल जाता है। इसी के समानान्तर जब तू अक्रोध, शान्ति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, संयम, तप, त्याग, सत्य, और ब्रह्मचर्य में आ जाता है तो स्वर्ग का दरवाजा खुल जाता है।

स्वर्गीय जीवन

३०७६ वह स्वर्गीय जीवन है, जिसमे सत्य, अहिंसा शांति व प्रेम भरा हुआ है, जिसमें आत्म-सम्मान है, आत्मनिष्ठा है।

स्वर्गीय सुख

३०७७ स्वर्गीय सुखों की भी इच्छा मत करो। अपनी करणी के आधार पर ये तो बिना मांगे ही मिलने वाले है।

३०७८ जैसे पानी का मंथन करने से नवनीत की प्राप्ति नही होती, वैसे ही हिंसा के बल पर स्वर्गीय सुखो की प्राप्ति असम्भव है।

स्वर्ण

३०७९ स्वर्ण सबको प्रिय है, किंतु जीवन को स्वर्ण बनाना किसको प्रिय है?

३०८० सोना ताप, कष और छेद सह सकता है, पर घुंघचियों के साथ अपनी तुलना सहन नही कर सकता।

स्वर्णिम इतिहास

३०८१ तिरस्कार और कठिनाइयां सहकर भी जो अपने विवेक से स्वीकृत मार्ग पर दृढ़ता से चलते है, वे अपना स्वर्णिम इतिहास बना लेते है।

स्वर्णिम युग

३०८२ हिंसा के लिए जितनी शक्ति, समय और श्रम लगा है एवं लग रहा है, उसका चतुर्थांश भी अहिंसक शक्ति के विकास में लगे तो स्वर्णिम युग आ सकता है।

३०८३ जिस दिन समाज में किसी प्रकार की रूढ़ि नहीं रहेगी और नए सिरे से जन्म लेने वाली रूढ़ि को पनपने का अवसर नही मिलेगा, वह समय भारत के इतिहास मे स्वर्णिम युग होगा ।

स्वर्णिम सूत्र

३०८४ "सहन करो और सफल बनो"—यह जीवन का स्वर्णिम सूत्र है।

स्वशासन

३०८५ सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक या पारिवारिक कोई भी क्षेत्र हो, स्वयं पर शासन किए बिना दूसरों पर उपदेश झाड़ने वाला व्यक्ति अपने मिशन मे कभी सफल नही हो सकता ।

३०८६ स्वशासन का विकास होने से प्राणशक्ति संचित होती है, मस्तिष्क तनावमुक्त होता है, चैतन्य केन्द्रों का जागरण होता है और जीवन में नियमितता आती है ।

३०८७ स्वशासन से निष्पन्न होने वाला अनुशासन सहज और स्थायी होता है। जहां स्वशासन जागृत नहीं होता, वहां दूसरों पर किया जाने वाला अनुशासन भय और आतंक का अनुशासन होता है ।

३०८८ स्वशासन का भाव विकसित होने के बाद व्यक्ति सहजभाव से संयत हो जाता है । फिर वह विलासी और प्रमादी जीवन से मुड़कर सदाचरण मे प्रवृत्त हो जाता है ।

३०८९ जब तक स्वशासन की भावना विकसित नही होती, तब तक किसी न किसी बाहरी शासन की आवश्यकता रहती ही है ।

३०९० जिसका स्वशासन पुष्ट होता है, वह सामाजिक अनुशासन का कर्णधार बन सकता है ।

स्वस्थ

३०९१ जो अपने आपमें रहता है, बाहर नही भटकता, वह स्वस्थ है ।

३०९२ स्वस्थ रहने के लिए श्रम और विश्राम दोनों अपेक्षित है।

३०९३ जो व्यक्ति तन-मन से स्वस्थ होता है, वह हर क्षण आनंद की अनुभूति करता है।

३०९४ संयम से चलने वाला सदैव स्वस्थ रहता है।

३०९५ जिस व्यक्ति का शयन और जागरण नियमित नही होता, भोजन संतुलित नहीं होता, पर्याप्त शारीरिक श्रम नहीं होता, खुली हवा मे भ्रमण नहीं होता, आवेश पर नियंत्रण नहीं होता, मन प्रसन्न नही होता और जिसे अच्छी नीद नहीं आती, वह कभी स्वस्थ नहीं रह सकता।

३०९६ जो व्यक्ति पथ्य की उपेक्षा कर कुपथ्य का सेवन कर लेता है, कुसंग, प्रमाद आदि के प्रभाव में आ जाता है, वह कभी स्वस्थ होने का स्वप्न भी नही देख सकता।

३०९७ जो व्यक्ति शुरू से अन्त तक स्वस्थ रहते है, वे कभी अकाल मृत्यु को प्राप्त नही होते।

३०९८ सम्पूर्ण विकृति न मिटे, तब तक व्यक्ति स्वस्थ नहीं कहलाता।

स्वस्थ जीवन

३०९९ खाद्यसयम, कर्मशीलता और प्रसन्नता स्वस्थ जीवन के रहस्य हैं।

३१०० भौतिक चकाचौध और विलासिता से दूर रहकर ही व्यक्ति स्वस्थ एवं सुखी जीवन जी सकता है।

३१०१ जीवन को मोड़ दिए विना स्वस्थ जीवन की कामना नही की जा सकती।

स्वस्थ समाज

३१०२ स्वस्थ व्यक्तियो से वना हुआ समाज ही स्वस्थ समाज होता है।

३१०३ स्वस्थ समाज मे भय के स्थान पर अभय, सन्देह के स्थान पर विश्वास और अलगाव के स्थान पर निकटता का वास होता है।

३१०४ परिस्थिति और जनता का मन दोनों बदलते है, तभी स्वस्थ समाज की संरचना हो सकती है।

३१०५ हिसा स्वस्थ समाज की सरचना मे सबसे अधिक बाधक तत्त्व है।

३१०६ स्वस्थ समाज वह होता है, जिसमे पैसे का महत्त्व नही, त्याग का महत्त्व हो।

३१०७ जब तापमान शून्य डिग्री से नीचे चला जाता है तो जीवन दूभर हो जाता है, वैसे ही समाज के अधिकाश लोग नैतिक मानबिदु से नीचे खिसक जाते है तो समाज की स्वस्थता खतरे में पड़ जाती है ?

३१०८ जिस कार्य से राष्ट्र की प्रगति अवरुद्ध होती है, वह कार्य न करने का संकल्प स्वस्थ समाज-रचना का संकल्प बन सकता है।

३१०९ एक स्वस्थ, स्वतंत्र और शान्तिपूर्ण समाज की रचना मैत्री, वन्धुता, प्रेम और त्याग—इन जीवन-मूल्यों पर आधारित होती है।

३११० जिस समाज का एक वर्ग अतिसंपन्नता और विलासिता की जिन्दगी जीता हो और दूसरा वर्ग जीवन की न्यूनतम अपेक्षाओं को भी पूरा न कर सके—वह स्वस्थ समाज नही है।

३१११ रूढ़ियों का अत ही स्वस्थ समाज की संरचना है।

३११२ 'कीचड़ मे पत्थर न डालना'—यही स्वस्थ समाज की संरचना के लिए कल्याणकारी मंत्र है।

३११३ अच्छा समाज वह माना जाता है, जहां ऊपर की मर्यादाए और कानून कम से कम होते है, पर आत्म संयम का भाव अधिक विकसित रहता है।

३११४ जिस समाज में व्यक्तियो के आचरण से धार्मिकता की सौरभ फूटे, वह स्वस्थ समाज होता है।

स्वागत

३११५ सच्चा स्वागत तो मै वहा मानता हूं, जहां जीवन में विकास की ओर गति दिखाई दे ।

३११६ स्वागत और अभिनंदन को मै बुरा नहीं मानता किन्तु उसमे प्रदर्शन और बाह्याडम्वर का मै समर्थक नही हू ।

३११७ संतो के स्वागत में अल्पकाल के लिए भी संत वनना पड़ता है ।

३११८ मेरी दृष्टि मे स्वागत और अभिनंदन किसी व्यक्ति का नही, संस्कृति का होता है, उच्च विचारों का होता है ।

स्वादलोलुपता

३११९ जो स्वादलोलुप नही होता, वह मनोवली और आत्मजयी वन सकता है ।

३१२० स्वादलोलुपता और ब्रह्मचर्य का सहावस्थान नही है ।

३१२१ जहां स्वाद को प्रमुखता दी जाती है, वहां स्वास्थ्य चौपट हो जाता है।

स्वादविजय

३१२२ स्वादविजय के प्रयोग से मानसिक और शारीरिक स्तर पर होने वाली बहुत सारी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है ।

स्वादवृत्ति

३१२३ स्वाद-वृत्ति या आसक्ति व्यक्ति को खोमचो पर ले जाती है, दुकानो पर ले जाती है, इससे शरीर बिगड़ता है और बच्चों के सस्कार बिगड़ते है ।

स्वाधीन

३१२४ जो स्व-तंत्र मे रहना नही जानता, वह कभी स्वाधीन नही हो सकता ।

३१२५ सपनै मे भी सुख नहि, कोइ पावै पर-आधीन ।
आठ पहर आनन्द में है, सदा सुखी स्वाधीन ॥

३१२६ जो विरोधी विचारो और हरकतो को समभाव से सहन करता है, वही स्वाधीन होता है ।

स्वाधीनता

३१२७ संयमित जीवनचर्या ही मच्ची स्वाधीनता की निशानी है ।

३१२८ स्वाधीनता का अर्थ केवल ममृद्धि-विकास ही नहीं, चरित्र-विकास भी है ।

३१२९ किसी को स्वायत्त वनाते समय व्यक्ति की अपनी स्वतंत्रता अपहृत हो जाती है ।

३१३० स्वाधीनता सबसे बड़ा आनन्द है और सबसे वडा उल्लास ।

३१३१ स्वाधीनता की दिशा में वे ही आगे वढ़ सकते है, जो आत्मानुशासन का आनद भोग लेते है।

३१३२ स्वाधीनता वहुमूल्य चीज है पर इसे पाने वाला कहीं अयोग्य तो नही है, इस पर जरूर चिंतन करना चाहिए ।

३१३३ अन्तरंग और वाह्य दोनो बंधनों से मुक्त होना ही सच्ची स्वाधीनता है।

३१३४ राष्ट्र की सर्वतोमुखी प्रगति मे प्रत्येक नागरिक अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे, तभी स्वाधीनता का स्वाद चखा जा सकता है ।

स्वाधीनता दिवस

३१३५ स्वाधीनता दिवस मनाने की सफलता इसीमे है कि राष्ट्र में जिस वात की गहरी कमी या अभाव हो, उसे दूर किया जाए ।

स्वाध्याय

३१३६ वही अध्ययन स्वाध्याय का अंग वनता है, जो व्यक्ति को आत्म-विश्लेषण करवा सके, अपनी पहचान दे सके ।

३१३७ आत्मा के विषय मे जानना, विचार करना, मनन करना स्वाध्याय है ।

३१३८ जीवनस्पर्शी प्रसंगों को सुनना, पढ़ना, कंठस्थ करना सबसे बड़ा स्वाध्याय है।

३१३९ अज्ञान मिटाने के लिए सबसे अच्छी खुराक स्वाध्याय है।

३१४० स्वाध्याय का अर्थ है—सत्साहित्य का वाचन, मनन और निदिध्यासन।

३१४१ स्वाध्याय मनःस्थिरता का प्रारम्भ है, अवगति का स्रोत है, तत्त्वदर्शन का मूल है तथा आत्मदर्शन का प्रदीप है।

३१४२ मस्तिष्क को परिमार्जित करने की प्रक्रिया का नाम स्वाध्याय है।

३१४३ मनुष्य आईने में अपना मुह देखता है। यदि उसके मुह पर कही कुछ लगा होता है तो वह उसे साफ कर लेता है। स्वाध्याय भी एक आईना है अपने आपको देखने का।

३१४४ अशांत मन को समाधान देने की जो प्रक्रिया है, वह स्वाध्याय है।

३१४५ स्वाध्याय आत्मलीनता की स्थिति में ही हो सकता है।

३१४६ स्वाध्याय के बिना जीवन की दिशा नही बदल सकती।

३१४७ जिस व्यक्ति की प्रतिभा कुंठित होती है अथवा अल्प विकसित होती है, स्वाध्याय से वह भी सम्पन्न प्रतिभावान् बन जाता है।

३१४८ स्वाध्याय से आत्महित का ज्ञान होता है, बुरे विचारों का संवरण होता है और चारित्र मे निश्चलता आती है।

३१४९ जब तक हम स्वाध्याय नही करेंगे, अपने आसपास में होने वाली अच्छी बातों से वंचित रहेंगे।

३१५० स्वाध्याय एक ऐसा माध्यम है, जो नए विचारों का सृजन करता है और पुरानी विचार-संपदा को सुरक्षित रखता है।

३१५१ स्वाध्याय व्यक्तित्व-निर्माण का सूत्र है।

३१५२ स्वाध्याय के अभाव में ध्यान भी नही हो सकता।

३१५३ स्वाध्याय-साधना प्रखर होने पर व्यक्ति की अनुभूति प्रखर हो जाती है।

३१५४ शरीर-निर्वाह के लिए जैसे भोजन अनिवार्य होता है, वैसे ही जीवन के लिए स्वाध्याय अपेक्षित है।

३१५५ केवल भूखे रहना ही तपस्या नहीं है। स्वाध्याय भी एक महान् तप है। -

३१५६ सत्साहित्य का स्वाध्याय वैचारिक चेतना के ऊर्ध्वगमन की प्रशस्त प्रक्रिया है।

३१५७ आत्मानं प्रत्यनुप्रेक्षा स्वाध्याय.।
(आत्मा की अनुप्रेक्षा करना ही स्वाध्याय है।)

३१५८ जिन व्यक्तियों को तत्त्व की जिज्ञासा है, वे कम पढ़े-लिखे होकर भी सतत स्वाध्याय से बडे-बडे विद्वानो की कोटि मे आ सकते है।

३१५९ स्वाध्याय मानव की जडता को मिटाने का उत्तम साधन है।

३१६० आगमों के स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़े तो चिन्तन और व्यवहार में गभीरता आए बिना नही रहेगी।

३१६१ स्वाध्याय आत्म-नियमन और आत्म-जागरण का सुदर उपक्रम है।

३१६२ स्वाध्याय जीवन-बूंटी है, जिसके द्वारा जीवन सात्त्विक और सुसंस्कारी बनता है।

३१६३ स्वाध्याय-सोपान पर आरोहण किए विना कोई भी साधक साधना के प्रासाद पर नही पहुंच सकता।

३१६४ शारीरिक दुर्बलता और मानसिक उन्माद—ये दोनों ही स्वाध्याय के विघ्न है।

३१६५ स्वाध्याय के अभाव में स्नातकोत्तर परीक्षाए उत्तीर्ण कर लेने पर भी व्यक्ति का ज्ञान सतही रह जाता है।

३१६६ स्वाध्याय से नए-नए तथ्य अनावृत होते है।

३१६७ स्वाध्याय-ध्यान की अग्नि मे तपकर ही आत्मारूपी स्वर्ण निखरता है।

३१६८ स्वाध्याय से एकाग्रता वढती है।

३१६९ सत्स्वाध्याय रूपान्तरण की प्रक्रिया है। इससे आदत, स्वभाव और पूरा व्यक्तित्व वदल जाता है।

स्वाध्यायी

३१७० विद्यावृद्धमिदं विश्व, यन्निर्विद्यानुपेक्षते ।
स्वाध्यायस्नातकाः सन्तो, भवन्त्यभ्यर्हिता जनैः ।।
(यह बौद्धिक युग है। इसमे अशिक्षितों की उपेक्षा होती है। लोग उनकी पूजा करते है, जो स्वाध्याय स्नातक हैं।)

३१७१ जो व्यक्ति जितना अधिक स्वाध्यायी होगा, वह उतना ही निर्मल रह सकेगा।

स्वाभिमान

३१७२ अपने स्वाभिमान को सुरक्षित रखना गौरव की वात है।

३१७३ स्वाभिमान के विना कोई भी समाज जीवित नहीं रह सकता।

३१७४ यदि किसी ने अपने स्वाभिमान को खो दिया तो समझना चाहिए कि उसने अपना सव कुछ खो दिया।

स्वाभिमानी

३१७५ सुविधाओं के नाम पर परतंत्रता की वकालत करना किसी भी स्वाभिमानी को स्वीकार्य नही होगा।

स्वामी

३१७६ निर्विशेष यदा स्वामी, समं भृत्येषु वर्तते ।
तत्रोद्यमसमर्थानामुत्साहः परिहीयते ।।
(जव कार्यरत और आलसी—दोनो प्रकार के भृत्यो के प्रति स्वामी समान वर्ताव करता है, तव परिणाम स्वरूप उद्यमी भृत्यो का उत्साह घट जाता है।)

स्वामी : सेवक

३१७७ जहा स्वामी प्रसन्न होते है, वहां सेवक के अवगुण भी गुण वन जाते हैं। जहां स्वामी अप्रसन्न होते है, वहां सेवक के गुण भी दोष वन जाते हैं।

स्वार्थ

३१७८ तुच्छ स्वार्थभावना विकास के रास्तों को बदकर समाज को अंधेरे गलियारों में लाकर छोड़ देती है।

३१७९ स्वार्थ का ताप सुख-दुःख की साझदारी की भावना को सुखा देता है।

३१८० स्वार्थ के घेरे से मुक्त हुए विना सेवा के खेत में कोई भी आदर्श अंकुरित नहीं हो सकता।

३१८१ स्वार्थ मनुष्य की ज्ञान-ज्योति को आवृत कर देता है। वह सब कुछ देखता हुआ भी अनदेखा कर चलता रहता है।

३१८२ जहां भी स्वार्थ टकराते है, युद्ध के वादल उमडने-घुमडने लगते है।

३१८३ स्वार्थ जव सिर पर चढ़कर वोलता है, तव उसमे किसी का अस्तित्व सुरक्षित नहीं रहता।

३१८४ अपने निहित स्वार्थो का विसर्जन कर दिया जाए तो कठिन से कठिन समस्या का तत्काल समाधान उपलब्ध हो सकता है।

३१८५ जिन लोगों ने अपने वैयक्तिक स्वार्थ का त्याग नही किया, वे ऊर्ध्वगमन की दिशा मे आगे नही बढ सके।

३१८६ अहिंसा में विश्वास करने वाला व्यक्ति सवंधो की आच पर स्वार्थ की रोटी नही सेक सकता।

३१८७ स्वार्थतत्र मे रामराज्य की कल्पना करना व्यर्थ है।

३१८८ स्वार्थी मनोवृत्ति का परिमार्जन करने के लिए स्व और पर की भावना को स्वत्व के विस्तार मे विलीन करना जरूरी है।

३१८९ स्वार्थ चेतना के तत्त्व जब तक सक्रिय रहेंगे, बुराई का अस्तित्व किसी न किसी रूप में वना रहेगा।

३१९० स्वार्थ ने जिसकी आंखों पर पर्दा डाल दिया, उसे कुछ भी भली वात सूझ पडेगी, यह होने का नहीं।

३१९१ स्वार्थबुद्धेः प्रधानत्वं, वैषम्यमिति पर्ययः।
(स्वार्थवुद्धि की प्रधानता और विषमता—ये दोनों पर्यायवाची शब्द है।)

३१९२ आदमी अपने स्वार्थ को मुख्य मान लेता है, तब वह समाज के प्रति निरपेक्ष व्यवहार करने लग जाता है, इस स्थिति में हिंसा को उत्तेजना मिलती है।

३१९३ व्यक्ति वैदिक है, सिक्ख है, ईसाई है, जैन है, पर यदि नैतिक नही है तो इसका सबसे बड़ा कारण है—स्वार्थ।

३१९४ जब तक देश के सत्तारूढ़ और सत्ता के उम्मीदवार लोग स्वार्थपरता की भावना से ऊपर नही उठेंगे, देश का भला नहीं हो सकता।

३१९५ स्वार्थ और अधिकार की बात जहां भी आडे आती है, कर्तव्यनिष्ठा की भावना गौण हो जाती है।

३१९६ अपने अस्तित्व की सुरक्षा की जा सकती है, पर उसके लिए किसी अन्य के अस्तित्व को समाप्त करना स्वार्थ की पराकाष्ठा है।

३१९७ एक आदमी धर्म करता चला जाए और उसमें स्वार्थ की वृत्ति कम न हो तो मानना चाहिए कि सूर्य की रश्मियां फैलती गयीं पर अन्धकार कम नहीं हुआ।

३१९८ जो व्यक्ति शत्रुता का सिरदर्द मोल न लेना चाहे, वह अपने स्वार्थो को सीमित करे।

३१९९ जो व्यक्ति औरों की पीड़ा नहीं समझता, दूसरों को सताता है, अपने स्वार्थ के लिए पड़ौसी को दुःखी बनाता है, यह व्यक्तिवाद नहीं, स्वार्थवाद है।

३२०० केवल दुःख के समय में हम मंत्र का जप करते है तो वह स्वार्थ हो जाता है।

३२०१ स्वार्थ यदि जीवन में प्रभावी है तो वह व्यक्ति को आत्मा से पराङ्मुख बनाता है।

३२०२ नियमास्तत्कृतेऽन्ये स्यु. येन स्वार्थः प्रसिद्ध्यति।
नियमास्तत्कृतेऽन्ये च, येन स्वार्थो न सिद्ध्यति॥

(जिससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता है, उसके लिए नियम कुछ दूसरे होते है और जिससे स्वार्थ नही सधता उसके लिए नियम कुछ दूसरे ही।)

३२०३ व्यक्तिगत स्वार्थ का परिसीमन या विसर्जन किए बिना दायित्व-बोध नहीं हो सकता ।

३२०४ स्वार्थो की टक्कर में वह सब कुछ हो सकता है, जो नहीं होना चाहिए ।

३२०५ स्वार्थ के नष्ट हो जाने पर सारे संसार में स्वत: साम्यवाद आ जाएगा ।

३२०६ धर्म में अनेकता यानी विरोध है ही नहीं । जो विरोध झलकता है, वह सब स्वार्थ है ।

३२०७ स्वार्थ मानव का चहुंमुखी पतन कर देता है ।

३२०८ स्वार्थस्तनुते चक्षुरंधं, मोहेन भावितं भूयः ।
कुर्वंश्चेतो भंगं, वैषम्यं प्रतिचरणमपि जनयन् ॥
(स्वार्थ मोह से प्रभावित होता है । वह आखो को अंधा और चित्त को विक्षिप्त वनाता है तथा पग-पग पर विपमता पैदा करता है ।)

३२०९ भौतिक जगत् में अपने लिए करे वह स्वार्थ, जो औरों के लिए करे वह परार्थ कहलाता है । अध्यात्म जगत् में जो अपने लिए करे वह स्वार्थ, जो सबके लिए करे वह परमार्थ है ।

३२१० स्वार्थ-चेतना का विघटन होने पर अहंचेतना सहज भाव से टूट जाती है ।

३२११ एक सीमा तक स्वार्थसिद्धि को बुरा नहीं कहा जा सकता, किन्तु दूसरों के स्वार्थो को विघटित कर अपना स्वार्थ साधना निश्चित ही बुरा है और वहुत बुरा है ।

३२१२ मनुष्य की स्वार्थ-चेतना जितनी प्रखर होती है, वह अपने लिए तथा अपनी जाति के लिए उतना ही घातक प्रमाणित होता है ।

३२१३ जब तक व्यक्ति स्वार्थ के चंगुल से नहीं निकल पाता, तब तक उसे यह भी भान नही रहता कि वह जो कुछ कर रहा है, वह कितना उचित है ? कितना अनुचित है ?

३२१४ अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए करोड़ों व्यक्तियों को गुमराह करना, उनके जीवन को नष्ट करना क्या चिंतन का छिछलापन नही है !

३२१५ स्वार्थ के सामने कोई भी सिद्धान्त नहीं टिक सकता।

३२१६ धर्म और भगवान् ज्ञान को, मिट्टी में मढ डाला।
स्वार्थों की चलती चक्की में, सबको ही पिस डाला॥

३२१७ स्वार्थसाधना में एकता नहीं पनप पाती।

३२१८ नैतिक आस्था स्वार्थ की परिक्रमा नही कर सकती।

३२१९ जहां स्वार्थलिप्सा होती है, वहां कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य रहती ही है।

३२२० स्वार्थ का विसर्जन हुए विना मनुष्य दूसरों के हितों में बाधा डालने वाली प्रवृत्ति से अपने को बचा नही सकता तथा दूसरों की हितचिंता में प्रवृत्त नही हो सकता।

३२२१ स्वार्थमुक्ति के विना कोई भी महान् कार्य सम्पादित नहीं हो सकता।

३२२२ जहां केवल अपनी ही स्वीकृति होती है, वहां दूसरे के लिए जगह नही छूटती।

३२२३ राक्षसीवृत्ति से वचकर मनुष्य मनुष्य वना रहे, यह तभी संभव है, जव परस्पर टकराने वाले स्वार्थों में सामञ्जस्य विठाया जाए।

३२२४ जिनका आवेश अनियंत्रित और स्वार्थ असीमित हो जाता है, वे लोकतंत्र को सफल नहीं कर सकते।

३२२५ बोझिल है जन-जन का जीवन
स्वार्थो का साम्राज्य खिला है।
दुराचार के गहन गर्त में,
मानो गिरने जगत् चला है॥

३२२६ स्वार्थ की वृत्ति मैत्री या प्रेम को प्रस्फुटित नहीं होने देती।

३२२७ व्यक्ति स्वार्थ की सीमा से हटकर व्यापक क्षेत्र में काम करने की मानसिकता बनाए तो उसके जीवन की धारा आध्यात्मिक, नैतिक और शैक्षणिक आयामों से जुड़ सकती है।

३२२८ केवल अपने को ही सुखी, महान् और उच्च बनाने तथा समझने की भावना होती है, तब दूसरों को दुःखी, हीन और नीच मानने की प्रवृत्ति अपने आप बन जाती है।

३२२९ स्वार्थ सरल है, परार्थ कठिन है और परमार्थ कठिनतम।

३२३० तुच्छ-तुच्छ नाकुछ स्वार्थो के कारण यों क्यों लड़ते हो ?
मान, बड़प्पन के बन भूखे, क्यों गड्ढे में गिरते हो ?

३२३१ स्वार्थवृत्तिरिहैकस्य द्वितीये परिवर्तनम्।
तावज्जनयति प्रायो यावच्छक्यं न कल्पितुम् ॥
(एक व्यक्ति की स्वार्थवृत्ति दूसरे मे इतनी अनिष्ट प्रतिक्रिया पैदा कर देती है, जिसकी कल्पना तक नही की जा सकती।)

३२३२ जिस संगठन का आधार केवल स्वार्थ होता है, वह दीर्घकाल तक नही टिक सकता।

३२३३ दूसरों के स्वार्थो के हनन का बदला अपने स्वार्थो की हत्या कर चुकाना पड़ेगा, यह कल्पना उन लोगो ने नही की थी, जो ईश्वरीय सत्ता का आशीर्वाद लेकर गरीबों पर शासन करने के लिए ही इस धरती पर पैदा हुए थे।

३२३४ स्वार्थ सारे अन्याय और सारी दुर्बलताओं का जन्मदाता है।

३२३५ जहां स्वार्थ आ जाता है, वहां मनुष्यता का लोप हो जाता है।

३२३६ किसी के अर्थ को अनर्थ कर प्रसारित करना, किसी के प्रति भ्रान्ति फैलाना स्वार्थमयी प्रवृत्ति है।

३२३७ जनतंत्र या प्रजातंत्र तभी सफल होगा, जब स्वार्थान्धिता समाप्त होगी।

३२३८ जहां स्वार्थातीत चेतना का जागरण हो जाता है, वहां भय और प्रलोभन स्वयं समाप्त हो जाते है।

स्वार्थी

३२३९ केवल स्वार्थ की पूजा करने वाले लोग अपना भाग्य परतन्त्रता के हाथों सौप देते हैं।

३२४० सम्बंधानपरान् सर्वान्, गौणीकृत्य प्रपश्यति।
स्वार्थसिद्धि प्रमुख्येन, स्वार्थदृष्टिरसौ जनः ॥
(जो व्यक्ति दूसरे सभी सम्बन्धो को गौण कर केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि को ही प्रमुखता देता है, वह स्वार्थी है।)

३२४१ मेरी दृष्टि में स्वार्थी आदमी जितना भयंकर होता है, उतना भयंकर दुनिया में कोई भी नहीं होता।

३२४२ स्वार्थी मानव बिल्ली से चूहे को बचाने के लिए दयालु बन जाता है, किन्तु मनुष्य के गले पर छुरा घोंपते समय कुछ नहीं सोचता।

३२४३ स्वार्थी व्यक्ति अपनी सुख-सुविधा को ही अधिक महत्त्व देता है। इसलिए त्याग की भाषा वह समझ ही नहीं सकता।

३२४४ स्वार्थी मानव धर्मशास्त्र की बात को भी अपने विचारों के अनुरूप गढ लेता है।

३२४५ स्वार्थ की आंख से देखने वाला और स्वार्थ की धरती पर चलने वाला परमार्थ की बात कैसे सोच सकता है ?

३२४६ स्वार्थी अपने विश्वास को खो देता है।

३२४७ मनुष्य कितना स्वार्थी है कि उसने आज शिक्षा को भी स्वार्थ का अखाड़ा बना लिया है !

३२४८ महापुरुष किसी सम्प्रदाय विशेष के नही होते किन्तु स्वार्थी लोग उन्हें अपने घेरे में बांध लेते हैं।

३२४९ पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ स्वार्थी व्यक्ति जीवन में आत्म-साक्षात्कार की दिशाओं को कभी नही खोल सकता।

स्वावलम्बन

३२५० पैरों का सम्बन्ध स्वावलम्बन से है। अपने पांवों पर खड़े होने की बात इसी तथ्य को अभिव्यक्ति देती है।

३२५१ राष्ट्र की प्रबुद्ध जनता स्वावलंबन के सूत्र को जीवन में स्थान नही देगी, तब तक देश के विकास का चक्का गतिशील नहीं हो सकेगा।

३२५२ हाथ से कार्य करने में किसी भी व्यक्ति की इज्जत या प्रतिष्ठा में कोई कमी नही आती।

३२५३ जब तक स्वावलम्बन है, तब तक जीवन है।

३२५४ श्रम और स्वावलंबन के भाव जागृत हों तो हर दुविधा सुविधा में परिणत हो सकती है।

स्वावलम्बी

३२५५ स्वावलम्बी व्यक्ति को हीनभाव का राहु कभी ग्रसित नहीं कर सकता। जो व्यक्ति जितना स्वावलम्बी होगा, वह उतना ही अधिक सुखमय और शांतिमय जीवन व्यतीत कर पाएगा।

३२५६ स्वावलम्बी व्यक्ति हो या देश, वे अपनी सार्थकता थोड़े ही समय मे सिद्ध कर देते हैं।

३२५७ स्वावलम्बी व्यक्ति ही कठिन से कठिन परिस्थिति से जूझने का साहस रख सकता है। उसके लिए कोई भी कार्य दुःसाध्य नहीं रहता।

३२५८ जिसका संयम जितना परिपक्व होता है, वह उतना ही स्वावलम्बी होता है।

३२५९ स्वावलम्बी व्यक्ति को किसी भी कार्य के लिए दूसरे की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

स्वास्थ्य

३२६० विषयों के प्रति अनासक्ति ही स्वास्थ्य की प्रथम कुंजी है।

३२६१ स्वास्थ्य बोध के लिए अधिक उलझन में न जाकर इतनी सी बात समझ ली जाए कि खाना पशु की तरह और पचाना मनुष्य की तरह।

३२६२ हितकारी, सीमित और सही ढंग से अर्जित और उत्पादित भोजन करने वाला अपने स्वास्थ्य को सुरक्षित रखता है।

३२६३ अंतस्तोष ही सुंदर स्वास्थ्य का लक्षण है।

३२६४ अच्छा स्वास्थ्य आध्यात्मिक विकास का महत्त्वपूर्ण घटक है।

३२६५ अतीत का प्रायश्चित्त और भविष्य में वैसा न करने का संकल्प स्वास्थ्य का लक्षण है।

३२६६ स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता रखी जाए तो आरोग्य की दिशा में गति हो सकती है।

३२६७ आत्मा, मन और शरीर के स्वास्थ्य की तीन पहचान है— आत्मरमण, संतुलन और नीरोगता।

३२६८ नीति और प्रकृति में चलना ही स्वास्थ्य है।

३२६९ अप्रमाद में स्वास्थ्य का राज छिपा है।

३२७० जब कभी किसी व्यक्ति का मन अप्रसन्न होता है अथवा किसी के प्रति शत्रुता के भाव से भरा होता है, शरीर में अस्वास्थ्य के लक्षण प्रकट होने लगते है।

३२७१ मानसिक स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य है।

३२७२ जो व्यक्ति अधिक घूम-फिर नहीं सकता, योगासन नहीं कर सकता, वह खाद्य-संयम के प्रति सजग रहे तो स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता है।

३२७३ स्वाद के लिए खाने वाला स्वास्थ्य के साथ न्याय नही कर सकता।

३२७४ नशा स्वास्थ्य का दुश्मन है।

३२७५ शरीर के प्रत्येक अंग का सक्रिय रहना स्वास्थ्य की पहचान है।

३२७६ अभय अहिंसा का आराधन, इच्छा का परिमाण।
स्वास्थ्य मिले आहार शुद्धि से, व्यसन-मुक्ति दे त्राण ।।

३२७७ स्वास्थ्य की कितनी कीमत है, यह अस्वस्थ अवस्था में ही ज्ञात हो सकता है !

३२७८ रात को बहुत देर से सोना और बहुत देर से उठना—यह स्वास्थ्य के प्रतिकूल है।

३२७९ शरीर स्वस्थ होता है तो ध्यान, स्वाध्याय, सेवा आदि सभी प्रवृत्तियों का सचालन अच्छे ढंग से हो सकता है। अन्यथा चाहकर भी व्यक्ति साधना नहीं कर सकता।

स्वेच्छाचार

३२८० जितनी-जितनी हिंसा बढ़ती है, स्वेच्छाचार प्रश्रय पाता जाता है।

३२८१ स्वेच्छाचार आत्मपतन है। इससे बचना ही आत्मोत्थान का राजमार्ग है।

स्वेच्छाचारी

३२८२ स्वेच्छाचारी व्यक्ति किसी भी क्षेत्र में प्रगति नही कर सकता।

स्रोत

३२८३ स्रोत बिना पत्थर को चीरे बह न सकेगा,
स्रोत मार्ग की बाधाओं को सह न सकेगा।
स्रोत कभी भी मौन धारकर रह न सकेगा,
अपनी अन्तर्वाणी पूरी कह न सकेगा।।
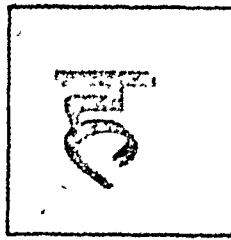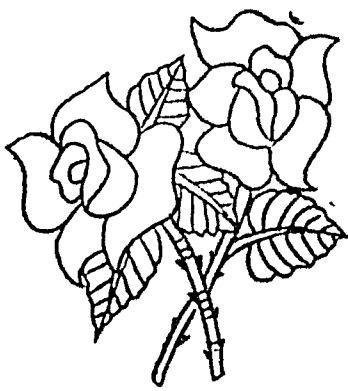
हंसविवेक

१ अच्छी वस्तु को स्वीकारना और बुरी वस्तु को नकारना—यह हंसविवेक है।

हठ

२ यह हठ कभी सत्य नहीं हो सकता कि मेरे घर में प्रकाश है और सबके घर में अन्धकार।

हठधर्मिता

३ अमुक क्रिया का परिणाम यही होगा, यह हठधर्मिता ही हमें सत्य से दूर ले जाती है।

हड़ताल

४ हड़तालों, घेरावों आदि हिंसक प्रवृत्तियों से राष्ट्र का विनाश तो हो सकता है पर समस्याओं का हल नहीं निकल सकता।

हताश

५ अपने साथी को आगे बढ़ता देखकर जो व्यक्ति हताश हो जाता है, वह अपनी मंजिल तक नहीं पहुंच सकता।

६ हताश आदमी कभी किसी समस्या का सही हल नही ढूंढ़ सकता।

७ हताश व्यक्ति अपने जीवन की प्रसन्नता खो देता है।

८ आशा बहुत बड़ी हो और फल बहुत कम मिले, तब मनुष्य हताश हो जाता है।

९ हताश व्यक्ति के लिए उन्नति संभव नहीं है।

१० जो रोते-कलपते जीते है, किसी तरह जिन्दगी को घसीटते हुए जीते है, वे तो मरे हुए के ही तुल्य है।

११ किसी भी कार्य का तात्कालिक परिणाम सामने न भी आए फिर भी व्यक्ति को हताश नहीं होना चाहिए।

हताशा

१२ हताशा मंजिल की दूरी को कम नही कर सकती।

१३ टूटा धीरज का धागा कोई न साधने वाला,
फूटा है बांध हृदय का कोई न बांधने वाला।
उठ-उठकर दौड़ रहे है आ कौन उन्हें अब रोके ?
उठते मानस-अम्बुधि में हा ! प्रलय-पवन के झोंके ।।

हत्या

१४ हत्या न केवल मनुष्य की मूर्खता का प्रतीक है अपितु अपने आप पर प्रहार है।

१५ हत्या से समस्या का समाधान निकालना अग्नि में से कमल को निकालना है।

१६ मनुष्य की हत्या पाप है तो विचारो की हत्या भी उससे कम पाप नही है।

हत्यारा

१७ मूक और निरपराधी जीवो की निर्मम हत्या करने वाले इस महान् सत्य से आंख मूंद लेते है कि जीने का अधिकार सबको है, सुख दुःख की अनुभूति सबको है, जीवन प्रिय और मृत्यु अप्रिय सबको है।

१८ मानव सम्पूर्ण अहिंसक नही बन सकता, पर कम से कम हत्यारा तो न बने।

हथियार

१९ उद्जनबम, राकेट, प्रक्षेपास्त्र आदि कोई भी हथियार शांति के साधन नहीं हो सकते।

२० सैनिको का मनोबल और नागरिको की नैतिकता बहुत बड़े हथियार है।

२१ केवल हथियार ही हथियार नही है। निराशा भी हथियार है, कुंठा भी हथियार है, असफलता, भय, आतंक और क्रोध भी हथियार है।

२२ हथियारों का प्रयोग यह आश्वासन कभी नही दे सकता कि इस संघर्ष में तुम्ही बचोगे और अंतिम जीत तुम्हारी ही होगी।

हरिजन

२३ गंदगी मनुष्य के भीतर है, आत्मा में है। जो इस गंदगी को दूर करता है, पवित्र चित्त है, वही सच्चा हरिजन है।

२४ हरिजनों की दुर्दशा का मुख्य कारण है—धर्मान्धता। धर्मान्ध लोग कभी उनके मदिर-प्रवेश पर रोक लगाते है तो कभी अन्य बहाना बनाकर उन्हे अकारण ही प्रताड़ित करते है।

२५ सफाई करनेवाला नीचा होता है या गंदगी फैलानेवाला। सफाई करनेवाले को बुरा मानें तब तो हमारी माताएं भी उसी कोटि में आ जाएंगी। माता जब पूज्य है तो भला सफाई करने वाला हरिजन नीचा कैसे हो गया ?

हरियाली

२६ मैत्री, प्रमोद, करुणा और अहिसा की पौध से मनुष्य के मन और मस्तिष्क को हरा-भरा बनाएं, तभी इस धरती की हरियाली अधिक उपयोगी बनेगी।

हर्ष

२७ राग और द्वेष जितने क्षीण होंगे, सात्त्विक हर्ष उतना ही प्रबल होता चला जाएगा।

हल

२८ समस्याओं का हल धन व सत्ता में नहीं, अहिंसा और अपरिग्रह में है।

२९ संयम और विवेक से समस्या का स्थायी हल निकाला जा सकता है।

हल्का

३० जिस व्यक्ति ने सुख-दुःख, लाभ-अलाभ मे समता का अभ्यास कर लिया, वही आदमी हल्का रह सकता है।

३१ हल्का बनने में जितना आनंद है, उतना किसी अन्य चीज में नहीं।

३२ हल है हल्कापन जीवन का।
यह एकमात्र अनुभव मन का॥

३३ जो व्यक्ति मन, मस्तिष्क और शरीर से हल्का रहता है, वह स्वस्थ जीवन जीता है।

३४ तू स्वभाव से ही है हल्का।
भार ढो रहा क्यो पुद्गल का ?

हस्तकला

३५ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग मे यांत्रिक उपकरणों से कला को निखारा जा सकता है, पर हस्तकला की अपनी गरिमा होती है।

हस्तक्षेप

३६ हस्तक्षेप की प्रवृत्ति प्रायः विग्रह उत्पन्न करती है।

३७ अपने आप में रहने वाला व्यक्ति दूसरे के काम मे हस्तक्षेप नही कर सकता।

हस्ताक्षर

३८ लिखित परिपत्र पर आदमी का हस्ताक्षर हो जाए तो उसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध रहती है।

३९ अपने हृदय का हस्ताक्षर जितना अन्तःस्पर्शी होगा, श्रोता और पाठक के मन का उतना ही गहरा स्पर्श करेगा।

हाथ

४० हाथ कर्तृत्व के प्रतीक है।

हादसा

४१ हिम्मत के साथ हादसे को सहन करने वाला सबके लिए आदर्श बन जाता है।

हानि

४२ व्यक्ति जितनी कलुषित, राग-द्वेष और स्वार्थमयी प्रवृत्ति करता है, वह अपनी उतनी ही हानि करता है।

हार

४३ त्राहि-त्राहि कर मरना जीवन की बहुत बड़ी हार है।

४४ मन की हार सबसे बड़ी हार है।

४५ जो चलता है, मंजिल तक पहुंच जाता है और जो ठहर जाता है, वह जीवन-रण में हार जाता है।

४६ परिस्थिति के आगे घुटने टेकना मानव की पहली हार है।

४७ संघर्ष की स्थिति मे कायरता का परिचय व्यक्ति की बहुत बड़ी हार है।

हार-जीत

४८ मेरे अभिमत से हार-जीत का इतना मूल्य नहीं है, जितना मूल्य लोकतांत्रिक आस्थाओं की सुरक्षा का है।

हार्दिकता

४९ हार्दिकता विषम परिस्थितियों में भी मानव को संरक्षण देती रहती है।

हार्दिक निष्ठा

५० जिस कथन के पीछे हृदय की निष्ठा न हो, तो वह आचरण में घटित नहीं हो सकता।

हार्दिक श्रद्धा

५१ हृदय की वास्तविक श्रद्धा दूसरे हृदय को खीच ही लेती है।

हार्दिक समर्पण

५२ हार्दिकसमर्पणं यत्र, तत्रानुशास्तिरात्मिकी।

(जहां हार्दिक समर्पण होता है, वहा अनुशासन आत्मिक होता है।)

५३ हार्दिक समर्पण सत्य की दिशा में प्रस्थान का प्रथम चरण है।

५४ विनयो नाम शिष्याणां, वात्सल्यं च गुरोरपि।
यत्र योगं प्रकुर्वाते, तत्र हार्दं समर्पणम्॥

(जहा शिष्यो का विनय तथा गुरु का वात्सल्य होता है, वहां हार्दिक समर्पण होता है।)

५५ जहां हार्दिक समर्पण है, वहां बड़ी से बड़ी उपलब्धियां प्राप्त की जा सकती है और असंभव को संभव करके दिखाया जा सकता है।

५६ समर्पण के आनंद का अनुभव एक समर्पित व्यक्ति ही कर सकता है पर यह तभी संभव है, जब वह हार्दिक हो।

हास्य

५७ सुख में तो सभी हंस लेते है, दुःख में हंसना सीखो, तभी जीवन की सार्थकता है।

५८ जो जीवनभर हंसता है, वह मौत के समय भी हंसता-हंसता चला जाता है।

५९ रोते रोते तो सारी उम्र बीत गई, उम्र ही नहीं, न जाने कितने जन्मों तक रोए, पर मिला क्या ? कुछ भी नहीं। कुछ पाना है तो हंसना सीखो।

हास्यास्पद

६० जड वस्तु चेतना पर हावी हो जाए, इससे अधिक हास्यास्पद बात और क्या हो सकती है ?

६१ एक तरफ लाखों-करोड़ो का ब्लैक और दूसरी तरफ लोगों को जूठी पत्तल खिलाकर पुण्य और स्वर्ग की कामना करना, सचमुच बड़ी हास्यास्पद बात है !

हिंसक

६२ हिंसक व्यक्ति जिस क्षण अहिसा के अनुभाव से परिचित होता है, वह उसकी ठंडी छाह पाने के लिए मचल उठता है।

६३ मैं केवल तोड़फोड़ करने वालों और घेराव डालनेवालों को ही हिसक नहीं मानता, किन्तु उन लोगों को भी हिंसक मानता हूं, जो अपने आग्रह के कारण वैसी परिस्थिति उत्पन्न करते है।

६४ संकल्पपूर्वक हिंसा करने वाला मानव मानव नही, दानव है, पशु है।

६५ हिंसक व्यक्ति किसी भी परिस्थिति मे संतुष्ट और समाहित नही रह सकता। उसकी हर प्रवृत्ति में एक खिचाव-सा रहता है। वह जिन क्षणों में हिसा से गुजरता है, एक प्रकार के आवेश से बेभान हो जाता है।

६६ मै मानता हूं कि प्राणवियोजन करने वाले व्यक्तियों से भी वे व्यक्ति अधिक हिंसक है, जो मानवीय संवेदनाओं का लाभ उठाते हैं और उन्ही पर अपना जीवन चलाते हैं।

६७ हिंसक व्यक्ति धर्म की छाया में भी नहीं बैठ सकता।

६८ हिंसा में रत रहने वाले व्यक्ति का संसार सहज रूप में शत्रु बन जाता है।

६९ जिस समय व्यक्ति देखता है कि आक्रान्ता सिर पर सवार होने को है और बचाव का कोई रास्ता नहीं है, उस समय वह सुरक्षात्मक कार्यवाही के लिए हिंसक हो उठता है।

७० हिंसा की स्थिति पैदा करने वाला कोई भी अच्छा नही है, भले ही वह साम्यवादी हो या असाम्यवादी।

७१ युद्ध करना ही हिंसा नहीं है, घर में बैठी औरत यदि अपने पारिवारिक जनों से वाक्युद्ध करती है तो वह भी हिंसा है।

७२ हिंसा करने वाला व्यक्ति किसी दूसरे का ही अहित नही करता वलिक अपनी आत्मा का भी अनिष्ट करता है—पतन करता है।

७३ हिंसक व्यक्ति पहले स्वयं मरता है, तब दूसरों को मारता है।

हिंसक : अहिंसक

७४ जो व्यक्ति हिंसक है, वह जलता रहता है। उसका हृदय भीतर ही भीतर आग की तरह चिनगारियां उगलता रहता है। किन्तु अहिंसक व्यक्ति शांत रहता है। उसका अन्त:करण शीतलता की लहरों पर क्रीड़ा करता रहता है।

७५ हिंसक बने रहना पहले दर्जे की कमजोरी है। अहिसक होना अन्तिम दर्जे की वीरता है।

७६ एक व्यक्ति युद्ध करते हुए भी अहिसा की रक्षा कर सकता है और दूसरा हिंसा न करता हुआ भी क्रूर हिंसक बन सकता है।

७७ हिंसक का घर बना बनाया नरक सदृश मिलेगा, अहिंसक का घर स्वर्ग से कम नही होगा।

हिंसक शक्ति

७८ हिंसा की शक्ति का प्रयोग संसार में कहीं पर भी हो, उसका दुष्परिणाम समूची मानव-जाति को भोगना पड़ता है।

७९ क्रूर से क्रूर हिंसात्मक शक्तियां भी आज तक संसार में शांति नही फैला सकीं, जबकि उनके हाथ में अणुबम और उद्‌जन बम जैसे विश्व को विध्वंस करने की पराकाष्ठा तक पहुंचाने वाले हथियार मौजूद हैं।

८० किसी भी देश में हिंसा की शक्ति बढ़ती है तो दूसरे देश भी उसकी प्रतिस्पर्द्धा में खड़े हो जाते हैं। इस प्रकार हिंसा की शक्ति असीम होती चली जाती है।

८१ जो लोग हिंसक शक्ति में विश्वास करते हैं, वे भौतिक उपलब्धियों के अंधियारे में जीते हैं और इन्सानियत को पनपाने वाले मूल्यों की अवहेलना करते हैं।

हिंसा

८२ दूसरों के सत्, चित् और आनन्द का अपहरण हिंसा है।

८३ है हिंसा आक्रामकता भय खाना भी हिंसा है,
उसमें बर्बरता इससे जग में निंदा खिसा है।
दोनों से आत्मपतन है दोनों है दुर्बलताएं,
क्यों लड़ें किसी से अकड़ें? क्यों मरने से घबराएं?

८४ जो व्यक्ति एक बार हिंसा के घेरे में उतर जाता है, वह फिर सहज ही उस वलय से बाहर नहीं निकल पाता। वह जिधर देखता है, उधर हिंसा ही हिंसा दिखाई देती है।

८५ जहां कहीं भी, जिस किसी रूप में प्रमाद होता है, वह हिंसा है।

८६ दुःख से प्रेरित होकर मरने वाला स्वयं अपनी इच्छा से मरता है, यह आत्महत्या भी हिंसा है।

८७ हिंसा से एक बार हिंसा का प्रतिरोध सा जान पड़ता है किंतु कुछ समय बाद वह और अधिक उग्र हो जाती है।

८८ हिंसा का कोई निश्चित चेहरा नहीं होता। वह अनेक रूपों में राष्ट्र के लिए चुनौती बनती है।

८९ यह सत्य है कि व्यापारी शस्त्र हाथ में नहीं रखते, तलवार नही छूते, पर दुकान में बैठे-बैठे कलम के द्वारा घोर हिंसा करते हैं।

९० मानसिक संतुलन का अभाव ही शस्त्रीकरण या हिंसा की जड़ है।

९१ हिंसा करूंगा, यह प्रतिज्ञा एक दिन भी नहीं निभ सकती। हिंसा करते-करते हाथ थक जायेंगे, मनुष्य पागल बन जायेंगे।

९२ मनुष्य के मस्तिष्क में विद्यमान हिंसा के केन्द्रों को निष्क्रिय कर दिया जाए तो मानवता की मुस्कान को बचाया जा सकता है।

९३ मैत्री के कवच से सुरक्षित व्यक्ति हिंसा के बाणों से आहत नहीं हो सकता।

९४ जैसे दूसरों को मारना हिंसा है, वैसे ही हिंसा को रोकने के लिए यदि आत्मबलिदान का अवसर प्राप्त हो तो उससे कतराना भी हिंसा है।

९५ नरक और स्वर्ग की पारलौकिक परिभाषा से हटकर भी सोचें तो यह कहने में कोई कठिनाई नहीं है कि हिंसा की वृद्धि जीवन को नारकीय बना देती है।

९६ जो हिंसा में सृष्टि का समाधान देखता है, वह सृष्टि के कण-कण में नीरसता उंडेल देता है।

९७ वैचारिक असहिष्णुता भी हिंसा का ही एक प्रकार है।

९८ हिंसा विविधमुखी होकर अनेक मार्गों से बाहर आती है। उसका प्रथम कारण है—ममत्व, दूसरा है—इच्छाओं का विस्तार, तीसरा कारण है—साम्प्रदायिक आग्रह और चौथा कारण है—बड़प्पन की स्पर्धा।

९९ मात्र हत्या ही हिंसा नही, अपितु संयम से च्युत होना भी हिसा है।

१०० गाजर और मूली को काटने में समय लगता है, पर मनुष्य तो गोलियों के धमाकों के साथ मर रहे हैं, यह हिंसा की चरम सीमा है।

१०१ हिंसा जीवन का नियम नहीं, फिर भी अहिंसा की चरम कोटि तक पहुंचे बिना जिस-तिस रूप में होती ही है।

१०२ कोई अपने स्थान पर बैठकर किसी के प्रति ईर्ष्या करता है, उसकी भावना उस तक नही पहुंच पाती, फिर भी वह हिंसा है।

१०३ अभय, प्रेम और मनोबल की दीक्षा से दीक्षित व्यक्ति हिंसा को जिस तत्परता से विफल कर सकते है, उस तत्परता से उसे वे सैनिक विफल नही कर सकते, जो शस्त्रों से सज्जित और शरीरबल से समर्थ होते हैं।

१०४ हिंसा की यह सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह निश्चित आश्वासन नही बन सकती, इसलिए उस पर विश्वास करने वाले संदिग्ध और भयभीत रहते है।

१०५ हिंसा को जन्म देने के दो कारण हैं—

१. भौतिक परिग्रह
२. विचारों का आग्रह

१०६ जहां जीवन है, वहां हिंसा उसके साथ जुड़ी हुई है। क्योंकि जीवन की अनिवार्य अपेक्षाएं हिंसा के बिना पूरी नहीं होती। पर इसका मतलब यह नही कि व्यक्ति अपने स्वार्थ और सामाजिक कर्त्तव्य के नाते होने वाली हिंसा को हिंसा न माने।

१०७ हिंसा शस्त्र से ही हो, यह आवश्यक नही। मन से हिंसा हो सकती है, वाणी से हिंसा हो सकती है, शरीर से हिंसा हो सकती है। राजनैतिक माहौल मे हिंसा हो सकती है। वैचारिक एवं व्यावहारिक स्तर पर हिंसा हो सकती है।

१०८ हिंसा के कारणों का निवारण किए बिना हिंसा के विरोध में नारे लगाने या आन्दोलन चलाने मात्र से समस्या का समाधान नही हो सकता।

१०९ जिस व्यक्ति का साध्य मोक्ष है, उसका साधन हिंसा नहीं, संयम ही हो सकता है।

११० हिंसा से हिंसा को मिटाने का प्रयत्न अग्नि को बुझाने के लिए घृत डालने के समान है। हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से किया जा सकता है। अहिंसा की प्रबल शक्ति के सामने वह अपने आप मर मिटेगी।

१११ आवश्यकता और मजबूरी को धर्म का चोगा नही पहनाया जा सकता। हिंसा हिंसा ही है, भले वह किसी भी स्थिति में क्यों न हो ?

११२ हृदय में हिंसा हो तो नाकुछ भी असहनीय हो जाता है।

११३ भोग सामग्री-सापेक्ष है, सामग्री परिग्रह-सापेक्ष और परिग्रह हिंसा-सापेक्ष है। मनुष्य न भोग छोड़ना चाहता है और न परिग्रह। केवल हिंसा छोड़ना चाहता है, किंतु उन दोनों के छूटे बिना हिंसा छूट नहीं सकती।

११४ हिंसा वहां टिकती है, जहां व्यक्ति सोचता है कि वह और मैं—दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते। या वह रहेगा, या मैं रहूंगा—ऐसा आग्रह हिंसा के परिसर में ही पनप सकता है।

११५ दूसरों के प्रति द्वेष की भावना, उन्हें गिराने का मनोभाव और उनकी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को रोकने के सारे प्रयत्न हिंसा में अन्तर्गभित हैं।

११६ हिंसा का तूफान बाहर से नहीं, वह मनुष्य के भीतर से उठता है। पर तूफान और उफान किसी अवधि विशेष तक ही प्रभावित कर सकते है। वे न स्थायी हो सकते है और न उनकी प्रतिष्ठा हो सकती है। हिसा भी हमारी प्रकृति अवस्था नहीं है।

११७ हिंसा से व्यक्ति की आकांक्षाओं का विस्तार होता है, जो व्यक्ति को अन्तहीन दुःख की दिशा मे अग्रसर करता है।

११८ वास्तव में आत्मपतन ही हिंसा है।

११९ परिस्थिति की बाध्यता के बिना हिंसा को त्यागने में जो आनन्द है, वह बाध्यता की स्थिति में नही है।

१२० हिंसा से विषमता आती है अतः उससे सबका उदय नहीं हो सकता।

१२१ मांस खाना हिंसा है तो मांस खाने वाले से घृणा करना भी हिंसा है।

१२२ आवेश में की जाने वाली हिंसा क्रूर हिंसा है, संकल्पजा हिंसा है।

१२३ जनतंत्र में जब 'जन' पीछे छूट जाता है और तंत्र आगे आ जाता है, तब हिंसा भड़कती है और नई-नई समस्याएं खड़ी होती है।

१२४ अपने प्रमाद से असत्प्रवृत्ति होने पर चाहे कोई जीव मरे या नहीं, हिंसा तो हो ही जाती है। सत् प्रवृत्ति होने पर जीव मर भी जाता है तो उसे हिंसा नही कहा जा सकता।

१२५ अपना उत्कर्ष दिखाने की दृष्टि से मैं ऊंचा बैठूं और दूसरों को नीचे बैठाऊं, यह मेरी अहंभावना है, जो हिंसा का ही एक रूप है।

१२६ जीवन की आशंसा और मौत का भय—दोनों हिंसा के मूल बीज हैं।

१२७ मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा स्वतः उन्नयन की ओर प्रवृत्त न होकर परतः उन्नयन की ओर प्रवृत्त होती है—यह परस्व के हरण की वृत्ति ही हिंसा का बीज है।

१२८ हिंसा की जड़ विचारों की विप्रतिपत्ति है।

१२९ हिंसा के मुख्य तीन कारण हैं—
- वैचारिक अभिनिवेश
- पदार्थ के प्रति आसक्ति
- मानवीय संबंधों में क्रूरता

१३० साम्प्रदायिक विद्वेष घोर हिंसा है, यह तभी तक होती है जब तक व्यक्ति समन्वय के रहस्य को नहीं जानता।

१३१ यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि हिंसा के द्वारा व्यक्ति को भयाक्रांत किया जा सकता है, समय पर राष्ट्र भी विजित किये जा सकते है परन्तु वह स्नेह और सौहार्द नहीं प्राप्त किया जा सकता, जो शासन की व्यवस्था के लिये अतीव आवश्यक है।

१३२ मारना हिसा है। इसी तरह किसी को मरवाना या मारने का अनुमोदन करना भी हिंसा है, पाप है।

१३३ हिंसा लोकतंत्र के लिए खतरा है। एक दल द्वारा दूसरे दल पर निम्नस्तर के आरोप लगाए जाते है, यह प्रतिहिंसा को जन्म देने वाली हिंसा है।

१३४ आज ग्राहक व्यापारी को धोखा दे रहा है और व्यापारी ग्राहक को। नेता लोग जनता को धोखा दे रहे है और जनता नेता लोगों को। इससे बढ़कर और क्या हिंसा हो सकती है ?

१३५ अस्वीकार की शक्ति प्रकट हुए बिना हिंसा का सक्षम प्रतिरोधात्मक विकल्प तैयार नही हो सकता।

१३६ केवल दण्ड-शक्ति के द्वारा हिंसा का समाधान हो सके, यह संभव नही लगता। मै चाहता हूं कि अहिंसा के कुछ प्रयोग सामने आए, आतंकवादियों के मन बदलें और उनमें सद्बुद्धि आए। पारस्परिक विश्वास, प्रेम और सौहार्द के द्वारा ही आतंकवाद और उग्रवाद जैसी हिंसक समस्याओं का समाधान संभव है।

१३७ आज की बढ़ती हुई निरंकुश हिंसा का एक कारण आर्थिक वैषम्य है।

१३८ मै मानता हूं अज्ञान बुरा है, दुर्बलता बुरी है, परंतु उसे मिटाने के लिए हिंसा का उपयोग उससे भी बुरा है।

१३९ हिंसा का पहला प्रसव है—वैर-विरोध, दूसरा आतंक और तीसरा—दुःख।

१४० हिंसा से हम एक बार किसी चीज को दबा सकते है, किंतु मिटा नही सकते।

१४१ किसी को गुलाम व दास बनाना बहुत बड़ी हिंसा है।

१४२ जो अपनी सुख-सुविधा को ही अधिक महत्त्व देता है, उसके लिए हिंसा के द्वार खुल जाते है।

१४३ जिसमें प्राणों का मोह और प्राप्ति की लालसा है, वह कभी हिंसा का प्रतिरोध नही कर सकता।

१४४ हिंसा को शक्तिसम्पन्न बनाने के लिए समय, श्रम और अर्थ लगता है, बुद्धि लगती है। उसका परिणाम है—आशंका, भय निराशा।

१४५ प्राचीन काल मे लोग मैदानों में संग्राम करते थे और वहीं हिंसा का प्राबल्य होता था किंतु आज तो घर-घर में तलवारें खटक रही है। बाप बेटे के खून का प्यासा हो गया है और बेटा बाप के खून का।

१४६ हिंसा से वही बच सकता है, जो मन, वचन और कर्म से संसार के सब प्राणियों के साथ मैत्री का हाथ बढ़ाता है।

१४७ चुनाव में नेता लोग पैसे से वोटो को खरीदते-बेचते है, क्या यह हिंसा नही है ?

१४८ जिस चीज का समाधान हिंसा द्वारा होता है, उसका अन्त भी प्रायः हिंसा द्वारा ही होता है।

१४९ हिंसा के बल पर विश्व-शांति की कल्पना करने वाले अंधकार में हैं।

१५० हिंसा मनुष्य के संस्कारों में रहती है, निमित्तों का योग पाकर वह प्रकट होती है।

१५१ मजबूरी और विवशता मे तो सभी व्यक्ति सहन करते हैं, लेकिन अशक्ति की अवस्था मे सहन करना सहिष्णुता नही है। वह तो एक प्रकार की कायरता है, कड़े शब्दो मे कहा जाए तो हिंसा है।

१५२ विद्रोह हिंसा की भावना को जन्म देता है।

१५३ हिंसा की यात्रा के लिए इतने रास्ते खुले हुए है कि उनको समझ पाना भी कठिन है।

१५४ दैहिक हिंसा करते हुए मनुष्य हिचकिचाता है, संकोच करता है किंतु अन्तर्वृत्तियों की हिंसा को कोई देखने वाला नहीं है।

१५५ जहां अध्यात्म नही है, वहा हिंसा आएगी ही।

१५६ हिंसा जीवन का एक ऐसा खतरनाक मोड़ है, जहां घुमाव है, फिसलन है और अंधेरा है।

१५७ केवल वाचिक चर्चा और सिद्धांत की प्रस्तुति कर हिंसा के साम्राज्य से लोहा नही लिया जा सकता। इसके लिए हृदय-परिवर्तन और ब्रेनवाशिंग की पद्धति का सहारा लेना होगा।

१५८ हिंसा जब स्वच्छंद और उच्छृंखल होकर आदमी की मनोवृत्ति बनने लगती है, तभी वह भयानक बनती है।

१५९ हिंसा को मिटाना है, हिंसक को नहीं। हिंसक को मिटाना तो स्वयं हिंसा है।

१६० त्याग से घबराना हिंसा की ओर गति है।

१६१ हिंसा के बादल क्यों दिन दिन गहरे होते जाते।
चिन्तनशील मनुज क्यों अपना धीरज खोते जाते।
मानव फिर से करना सीखे मानवता का मान।
यही है जीने का विज्ञान ॥

१६२ अणुशक्ति का उपयोग निर्माण के कार्य मे भी हो सकता है। पर हिंसा के संस्कारों की सक्रियता मे निर्माण की बात गौण हो जाती है और ध्वंस की बात प्रमुख बन जाती है।

१६३ हिंसा के द्वारा कभी किसी पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती।

१६४ सत्ता के प्रलोभन से दल बदल लेना क्या हिंसा नही है?

१६५ आतंक अपनी सुरक्षा के लिए हिंसा का सहारा लेता है।

१६६ हिंसा का स्थायी समाधान सद्भावना, सहअस्तित्व और सहिष्णुता में ही खोजा जा सकता है।

१६७ हिंसा जीवनशैली बन जाए, यह एक खतरनाक बिन्दु है।

१६८ हिंसा का प्रतिरोध वही कर सकता है, जिसका अपना स्वतंत्र चिन्तन होता है।

१६९ थावर हिंसा जो नही छूटै, तो त्रसहिंसा त्याग।
मानवता रो मान बढावो, बपरावो बेराग ॥

१७० हिंसा का अल्पीकरण ही जीवन की श्रेष्ठता है।

१७१ आज बनी है हिंसा मानो, जीवन की परिभाषा।
मूढ मनुज करता है उससे, समाधान की आशा।

१७२ अर्थ और पदार्थ का अर्जन और संरक्षण हिंसा के बिना कैसे हो सकता है?

१७३ हिंसा और संग्रह एक ही वस्त्र के दो छोर हैं। हम संग्रह करें और हिंसा से बचना चाहे, यह कैसे संभव हो सकता है?

१७४ आज हिंसा को मिटाने की बात तो बहुत हो रही है, पर वह प्रतिदिन बढ़ती जा रही है क्योंकि हिंसा को मिटाने वालों में अभी मृत्यु को वरण करने का साहस जागृत नही हुआ।

१७५ हिंसा की समस्या नई नही है। इसने हर युग मे मनुष्य को बेचैन किया है, अनिश्चित किया है और असमाधिस्थ बनाया है।

१७६ अपने विश्वास को बलपूर्वक किसी दूसरे पर थोपने का प्रयास करना भी हिंसा है, वह फिर चाहे अच्छी से अच्छी धार्मिक क्रिया भी क्यों न हो।

१७७ बुरा सोचने से किसी का बुरा हो या न हो, पर तुम तो हिंसा के दोषी बन ही जाओगे।

१७८ जब तक मनुष्य की मानसिकता को अर्थ और सत्ता का शिकंजा कसता रहेगा, जब तक एक पुत्र और पुत्री के बीच की भेदरेखा समाप्त नहीं होगी, हिंसा नए-नए रूप धारण करती रहेगी।

१७९ हिंसा का सम्बन्ध निजी आत्मा से है, न कि बाहरी जीवों से।

१८० हिंसा का प्रयोग मनुष्य उसी समय करता है, जब वह सामने वाले से भयभीत होता है, इसलिए भय हिंसा है।

१८१ किसी की स्वतंत्रता का अपहरण हिंसा है।

१८२ जब तक अहिंसा की चेतना नहीं जागती, तब तक व्यक्ति हिंसा के सहारे चलता है।

१८३ साधारण साहस हिंसा की आग को देखकर कांप उठता है। इसलिए हिंसा के प्रतिकार हेतु अप्रतिम साहस अपेक्षित है।

१८४ हिंसा चाहे चरम सीमा तक पहुंच जाए, पर उसका मूल्य-स्थापन नहीं हो सकता।

१८५ भेद के नीचे अभेद और अभेद के नीचे भेद तिरोहित रहता है। हम केवल भेद और विरोध को देखते हैं तो हिंसा को बल मिलता है। केवल अभेद और अविरोध में सापेक्षता का अनुभव करना, उनमें सामंजस्य स्थापित करना हिंसा की समस्या का समाधान है।

१८६ पक्ष-विशेष में बंधकर प्रतिरोध की बात करना स्वयं हिंसा है।

१८७ जहां मन मे कंपन होता है या दुर्बलता होती है, वहां किसी भी स्थिति का समाधान हिंसा में दिखायी पड़ता है।

१८८ खून से सना वस्त्र कभी खून से साफ नही होता, बीमारी को बीमारी से नहीं मिटाया जा सकता, वैसे ही हिंसा से हिंसा का समाधान नही पाया जा सकता।

१८९ समाज मे रहते व्यक्ति हिंसा से नही बच सकता, पर उसमे विवेक की जागृति होने से समाज का स्वरूप बदल जाता है।

१९० पशु, पक्षी आदि सभी चेतन प्राणी जीना चाहते है, मरना कोई नहीं चाहता, अतः हिंसा अन्याय है।

१९१ मैं सोचता हूं, काम के आधार पर किसी को अस्पृश्य मानना बहुत बड़ी हिंसा है।

१९२ मांग में औचित्य हो तो उसे स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं रहनी चाहिए, अन्यथा हिंसा के सामने झुकना सिद्धान्त की हत्या करना है।

१९३ स्वयं को विजित और अगले को पराजित करने की आकांक्षा भी हिंसा है।

१९४ मै दबाव को हिंसा मानता हूं।

१९५ मनुष्य को यदि युद्ध, शस्त्रबल या पाशविक शक्ति में विश्वास न हो तो वह हिंसा की अन्त्येष्टि कर सकता है।

१९६ जिस राष्ट्र और समाज मे हिंसा का बोलबाला होता है, रास्ते चलते बेगुनाह लोगों को मौत के घाट उतार दिया जाता है, वह उस राष्ट्र और समाज का दुर्भाग्य होता है।

१९७ हिंसा के द्वारा अपनी मांग प्रस्तुत करना मै उचित नही मानता।

१९८ ढेर सारे घास में एक छोटी सी चिनगारी रख दी जाए तो पूरी घास भस्मसात् हो जाती है। हिंसा की आग भी छोटा सा निमित्त मिलते ही भभक उठती है। उस आग पर काबू पाना कठिन। होता है

१९९ किसी को मारना ही हिंसा नही है, गुस्सा करना भी हिंसा है, किसी की आलोचना-प्रत्यालोचना और मर्मभेदी वचन कहना भी हिंसा है।

२०० एकान्त-दृष्टि से आग्रह, आग्रह से असहिष्णुता, असहिष्णुता से विरोध—इस प्रकार हिंसा क्रमशः बढ़ती रहती है।

२०१ हिंसा करना जैसे कायरता है, वैसे ही हिंसा को सहना भी कायरता है।

२०२ हिंसा के कारण ही मनुष्य के मन मे जाति, भाषा, सम्प्रदाय के भेद उभरते है और वह एक दूसरे को काटने का प्रयत्न करता है।

२०३ भोग स्वयं हिंसा है, उसकी सुरक्षा के लिए भी हिंसा करनी पड़ती है।

२०४ प्रतिहिंसा हिंसा का समाधान नहीं है, क्योंकि आज आप जिसे निर्बल समझकर हिंसा की भावना का शिकार बनाते हैं, कौन जानता है कि कल वही शक्तिशाली बन आपके प्रति प्रतिहिंसा का व्यवहार करे।

२०५ अन्तर् में किसी के प्रति छोटी से छोटी कलुषित या स्वार्थ-मयी भावना का होना भी हिंसा है।

२०६ यदि हम हिंसा को बहिन कहे तो झूठ उसका भाई है। जहां झूठ को प्रश्रय मिलेगा, वहां हिंसा कही न कहीं से आ ही टपकेगी।

२०७ हिंसा की जड़ विलासिता, ऐश्वर्य और अधिकार की भावना में है।

२०८ दूसरों की आजीविका का अपहरण, स्वार्थों और हितों का विघटन क्या हिंसा नही है ?

२०९ जीवन की अनिवार्यता के लिए की जाने वाली हिंसा किसी जटिल समस्या को जन्म नहीं देती। जटिलता पैदा होती है सांकल्पिक हिंसा से, जिसका सीधा संबंध है परिग्रह, संग्रह और पदार्थ की मूर्च्छा से।

२१० हिंसा नरक है, यह केवल सिद्धान्त नही है, अनुभूत सत्य है।

२११ दूसरे के दृष्टिकोण को सही रूप से नहीं समझना या उसे गलत रूप मे प्रस्तुत करना बहुत बडी हिंसा है।

२१२ अस्वस्थ चिंतन से ही हिसा की शुरूआत होती है।

२१३ जाति, धर्म आदि का आग्रह हिंसा है, और अपने को ऊंचा तथा औरों को हीन मानना भी हिंसा है।

२१४ किसी से अतिश्रम लेने की नीति हिंसा है।

२१५ हिसा के बल पर आज एक बात मनवाई जा सकती है तो कल हिसा के बल पर उस बात को बदलवाया भी जा सकता है। परिवर्तन का यह कोई सभ्य तरीका नहीं हो सकता।

२१६ हिंसा मृत्यु है। व्यक्ति शस्त्र हाथ में ले जिस प्राणी को मारने के लिए उद्यत होता है, वह मरे या नही, मारनेवाला पहले ही मर जाता है।

२१७ हिसा मात्र तलवार से ही नही होती, मिलावट और शोपण भी हिंसा है, जिसके द्वारा लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया जाता है

२१८ हिंसा होने का कोई काल निर्धारित नही होता। वह कभी भी और कहीं भी घटित हो सकती है।

हिंसा : अहिंसा

२१९ हिसा और अहिंसा धूप और छांह की तरह एक सीमा के दो पहलू है। धूप और छाह की तरह हिसा और अहिसा का मिश्रण नहीं हो सकता।

२२० हिसा की तुलना में अहिंसा के क्षेत्र मे बहुत कम काम हो रहा है। जो हो रहा है, वह भी मौखिक और उपदेशात्मक। इस स्थिति में अहिसा की तेजस्विता हिसा को पराभूत कर सके, यह संभव नही है।

२२१ हिसा आग बरसाती है और अहिसा शीतल जल। हिसा वैर विरोध का उन्नयन करती है और अहिसा प्रेम, वात्सल्य तथा सौहार्द का।

२२२ हिंसा को सिखाना नहीं पड़ता, जबकि अहिंसा प्रशिक्षण से भी नही आती।

२२३ हिंसा को अहिंसा मानने से वही अनर्थ होता है, जो अफीम को गुड़ मानने से।

२२४ विश्व के सम्मुख दो ही मार्ग हैं—हिंसा और अहिंसा। हिंसा विनाश का पथ है, अहिंसा निर्माण का। एक अशांति और अराजकता उत्पन्न करता है तो दूसरा शांति और व्यवस्था।

२२५ हिंसा जीवन की समस्या को सुलझाने के बजाय उलझाती अधिक है। अहिंसा ही वह साधन है, जो समस्त उलझनों और विषमताओं को मिटा जीवन को शांति के विस्तीर्ण राजपथ पर अग्रसर होने की शक्ति देता है।

२२६ अहिंसा सौजन्य, शील, सद्भावना और मैत्री से ओतःप्रोत है। जहां इनका व्याघात होता है, वहां हिंसा है।

२२७ हिंसा आखिर हिंसा है। उसके पीछे किसी प्रकार का विशेषण जोड़कर उसे अहिंसा की कोटि में समाहित नहीं किया जा सकता।

२२८ अधिकार की भावना हिंसा है। मैत्री तथा सौहार्द की भावना अहिंसा है।

२२९ आज हिंसा के पास शस्त्र है, प्रशिक्षण है, प्रेस है, प्रयोग है, प्रचार के लिए अरबों-खरबों की अर्थव्यवस्था है, जबकि अहिंसा के पास ऐसा कुछ भी नही है, और तो और आस्था भी नही है।

२३० उलझन का बिन्दु यह है कि आदमी का विश्वास जितना हिंसा मे है, उतना अहिंसा में नही। वह हिंसा की शक्ति का जितना मूल्यांकन करता है, अहिंसा की शक्ति का नहीं करता।

२३१ हिंसा का इतिहास जितना पुराना है, अहिंसा का इतिहास उससे कम प्राचीन नही है।

२३२ अहिंसा की शक्ति महान् है, पर हिंसा की शक्ति भी कम नही है। अन्तर इतना ही है, अहिंसा का प्रयोग होता है आत्म-विकास के लिए और हिंसा का आत्मविनाश के लिए।

२३३ हिंसा जीवन की अनिवार्यता है और अहिंसा पवित्र और शांतिपूर्ण जीवन की अनिवार्यता। हिंसा जीवन चलाने का साधन है और अहिंसा आदर्श तक पहुंचने या लक्ष्य को पाने का साधन है।

२३४ अहिंसा सत् है, हिंसा असत् है। अहिंसा करुणा है, हिंसा घृणा है। अहिंसा सह-अस्तित्व है, हिंसा अलगाववादिता है। अहिंसा समता है, हिंसा क्रूरता है। अहिंसा अदृष्ट है, हिंसा दृष्ट है। अहिंसा जागृति है, हिंसा सुषुप्ति है। अहिंसा प्रकाश है, हिंसा अन्धकार है। अहिंसा अमृत है, हिंसा विष है। अहिंसा जीवन है, हिंसा मृत्यु है। अहिंसा मुक्ति है, हिंसा संसार है। अहिंसा आनन्द का द्वार है और हिंसा विषाद, संक्लेश एवं परिताप की परिछाया।

२३५ हिंसा में विश्वास करने वालों ने या तो अहिंसा की शक्ति को पहचाना नहीं या अन्तर्मन से प्रयोग नहीं किया। यदि अन्तर्मन से प्रयोग होता तो उसका परिणाम अवश्य आता।

२३६ हिंसा का मूलोच्छेद कभी संभव नही, फिर भी यह निश्चित है कि हिंसा के हाथों अहिंसा कभी हतप्रभ नही हो सकती।

२३७ हिंसा के संस्कार प्रवल होते है, तव अहिंसा का तेज मंद हो जाता है। अहिंसा के संस्कार सक्रिय रहते है, तव हिंसा मौन हो जाती है।

२३८ जब किसी को शत्रु मानना ही हिंसा है, तव किसी को शत्रु मानकर मारना अहिंसा कैसे हो सकती है?

२३९ हिंसा न छोड़ सके यह मानव जीवन की कमजोरी है पर उसे अहिंसा मानने की दोहरी गल्ती क्यों करे?

२४० निःसंदेह हिंसा पशुबल है और अहिंसा देवबल है। देववल के समक्ष पशुबल की हमेशा पराजय हुई है।

२४१ मन, वचन, काया की समता अहिंसा है और इनकी विषमता ही हिंसा।

२४२ अहिंसा की एक चिनगारी मे जितनी शक्ति है, उतनी हिंसा की होली में भी नहीं।

२४३ जितनी हिंसा, उतनी चारित्रिक दुर्बलता और जितनी अहिंसा, उतनी चारित्रिक दृढ़ता—इस सूत्र को मैंने परीक्षा की कसौटी पर कसा है और यह सोलह आना सही सिद्ध हुआ है ।

२४४ हिंसा ध्वंसात्मक है तो किसी अपेक्षा से अहिंसा भी ध्वंसात्मक है । हिंसा से अच्छाइयों का ध्वंस होता है तो अहिंसा से बुराइयों का ।

२४५ मानव ने अहिंसा को छोड़ हिंसा को ज्यादा पकड़ा, इसलिए उसका जीवन उतने ही संकटों और कष्टों से आकीर्ण बना ।

२४६ प्रलोभन और डंडे के बल पर हिंसा को छुडाना मैं अहिंसा नहीं समझता, वह तो हिंसा है ।

२४७ अहिंसा इसमें नही कि प्राणी जिंदा रहता है । हिंसा इसलिए नहीं कि प्राणी मर जाता है । अहिंसा है उठने में, उठाने में, आत्मपतन से बचने में और उससे किसी को बचाने में ।

२४८ हिंसा विधायक नही हो सकती । विधायक तो अहिंसा ही है ।

२४९ अहिंसा के प्रकम्पनो से व्यक्ति को जो आनंदानुभूति होती है, हिसा के प्रकम्पनों से तीन काल में भी वैसी अनुभूति नहीं हो सकती ।

२५० किसी के न चलने से पथ अपथ, किसी के न लेने से दया अदया नही बनती, वैसी ही किसी के न अपनाने से अहिंसा हिंसा नहीं बन सकती ।

२५१ हिंसा की काली रात को अहिंसा द्वारा ही उजले दिन में बदला जा सकता है ।

हिंसा और कायरता

२५२ कैसे हो सकती है वहां अहिंसा जहां व्यक्ति प्राणों के व्यामोह से अपनी जान बचाए फिरता है ? वहां कायरता है, भय है, मोह है, इसलिए हिंसा है ।

२५३ हिंसा और कायरता परस्पर एक-दूसरे के अनुगामी है । कायरता का मनोभाव ही हिंसा के साथ समझौता करता है ।

हिंसा और धर्म

२५४ यह बात दिन के उजाले जितनी साफ है कि जिन प्रवृत्तियों में हिंसा होती है, वहां धर्म नहीं हो सकता।

२५५ धर्म के लिए की जाने वाली हिंसा अहिंसा है—ये शब्द मुझे बिलकुल नहीं भाते।

हिंसा और परतंत्रता

२५६ क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जो हिंसा के बीज बोकर परतंत्रता की फसल नहीं काटता ?

२५७ परतंत्रता हिंसा का ही दूसरा नाम है। जितनी-जितनी हिंसा बढ़ती है, उतनी-उतनी परतंत्रता बढ़ती है।

हिंसा और परिग्रह

२५८ हिंसा तब तक रहेगी, जब तक परिग्रह रहेगा। हिंसा को तब तक नहीं मिटाया जा सकता, जब तक परिग्रह के प्रति हमारी आसक्ति समाप्त नहीं होती। परिग्रह का सीमाकरण होने पर हिंसा की समस्या स्वतः समाहित हो जाएगी।

हिंसा और प्रदूषण

२५९ प्रदूषण और हिंसा एक ही सिक्के के दो पहलू है।

हिंसा और शांति

२६० हिंसा मनुष्य की शांति और निश्चिन्तता के आगे एक प्रश्न-चिह्न खड़ा कर देती है।

२६१ कुछ लोग हिंसा की धरती पर शांति की पौध उगाना चाहते है। यह कठिन ही नही, असंभव काम है।

हित

२६२ जो व्यक्ति आत्महित और परहित साधना चाहता है, उसे शास्त्रों का ज्ञान करना ही होगा।

२६३ जो व्यक्ति अपना हित नहीं कर सकता, वह औरों का हित क्या करेगा ?

२६४ क्षणिक जागृति से उतना हित नही सधता, जो सतत लीनता से सधता है।

हिताहार

२६५ हिताहार की निम्न कसौटियां है—
- शरीर की शक्ति-क्षय का निवारण।
- शरीर की वृद्धि
- शरीर को उचित ताप-प्रदान
- बलकारक
- शीघ्र पाचन
- अनुत्तेजक
- स्मृति, आयु, वर्ण, ओज, सत्त्व एवं शोभा की वृद्धि।

हिन्दी

२६६ हिन्दी भाषा में राष्ट्रीय भाषा बनने की क्षमता है।

२६७ हिन्दी को हिंसा के बल पर आगे लाने की बात कभी भी नहीं सोचनी चाहिए। भले ही हिन्दी को सारे देश में अपनाने में दस-बीस वर्ष लग जाएं।

हिन्दुस्तान

२६८ हिन्दुस्तान ऐसा देश है, जहां भोग का नहीं, त्याग का, असंयम का नहीं, संयम का महत्त्व है।

२६९ आध्यात्मिक संपदा हिन्दुस्तान की एक ऐसी थाती है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। इससिए यहां स्वयं को भूला नही, पाया जाता है।

२७० धर्मक्रान्ति हुए विना हिन्दुस्तान का उद्धार नहीं हो सकता।

२७१ हिंदुस्तान के भाल पर उस दिन नया सूरज उगेगा, जिस दिन भारतीय जनता की आस्था त्याग, धैर्य और शौर्य पर केन्द्रित होगी।

२७२ सूर्य को जन्म देने का सौभाग्य पूर्वदिशा को प्राप्त है। त्योंही अहिंसा पर चलने और विचार करने वाले अनेक महापुरुष देश-विदेश में हुए है किंतु अहिंसा सार्वभौम का विकास और उदय तो हिंदुस्तान मे ही हुआ है।

२७३ जो भारत किसी जमाने में पुरुषार्थ एवं सदाचार के लिए विश्व के रंगमंच पर अपना शिर ऊंचा उठाकर चलता था, आज वहीं पुरुषार्थहीनता एवं अकर्मण्यता फैल रही है।

२७४ हिन्दुस्तान की असली तस्वीर गांवों में ही देखी जा सकती है।

२७५ हिन्दुस्तान ने कभी आक्रमण-नीति को प्रश्रय नहीं दिया; पर इसका अर्थ यह नहीं कि देशवासी अपनी रक्षा ही न करें।

२७६ मेरे सपनों में हिन्दुस्तान का एक रूप है। वह इस प्रकार है—

१. देश में गरीबी न रहे।
२. किसी प्रकार का धार्मिक संघर्ष न हो।
३. कोई किसी को अस्पृश्य मानने वाला न हो।
४. कोई मादक पदार्थों का सेवन करने वाला न हो।
५. खाद्य पदार्थो में मिलावट न हो।
६. कोई रिश्वत लेने वाला न हो।
७. कोई शोषण करने वाला न हो।
८. कोई दहेज लेने वाला न हो।
९. वोटों का विक्रय न हो।

२७७ हिंदुस्तान की पावन भूमि, जहां राम-भरत की मनुहारों में चौदह वर्ष पादुकाएं राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित रहीं, महावीर और बुद्ध जहां व्यक्ति का विसर्जन कर विराट् बन गए, कृष्ण ने जहां कुरुक्षेत्र में गीता का ज्ञान दिया और गांधीजी संस्कृति के प्रतीक बन अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर एक आलोक छोड गए, उस देश में सत्ता के लिए छीना-झपटी, कुर्सी के सिद्धांतों का सौदा, वैभव के लिए अपवित्र प्रतिस्पर्धा और विलास सने हाथों से राष्ट्र-प्रतिमा का अनावरण सचमुच कैसा-कैसा लगता है!

२७८ विश्व के दूसरे देशों में छोटी-छोटी बातों को लेकर क्रांतियां हो जाती है, पर हिन्दुस्तानी लोग बहुत कुछ सहकर भी खामोश रहते हैं।

२७९ हिन्दुस्तान से विदेशी हुकूमत का अंधकार मिट गया लेकिन आंतरिक अंधकार की तहें ज्योंकि त्यों जमी हुई हैं उन्हें हटाए विना वाह्य स्वतंत्रता का कोई मूल्य नही हो सकता।

२८० हिन्दुस्तान की यह विलक्षणता रही है कि उसने पदार्थ को आवश्यक माना पर उसे आस्था-केन्द्र नहीं माना। शस्त्र-शक्ति का सहारा लिया पर उसमें त्राण नही देखा। अपने लिए दूसरों का अनिष्ट हो गया तो उसे क्षम्य नहीं माना।

हिन्दुस्तानी

२८१ 'स्टैण्डर्ड ऑफ लाइफ' के नाम पर भौतिकवाद, सुविधावाद और अपसंस्कारों का जो समावेश हिन्दुस्तानी जीवनशैली में हुआ है या हो रहा है, वह निश्चित रूप से चिन्तनीय है। वीसवी सदी के हिन्दुस्तानियों द्वारा की गई इस हिमालयी भूल का प्रतिकार या प्रायश्चित्त इसी सदी के अन्त तक हो जाए तो वहुत शुभ है। अन्यथा आनेवाली शताब्दी की पीढ़ियां अपने पुरखों को कोसे विना नहीं रहेंगी।

२८२ हिन्दुस्तानी जनता अभी तीन मुख्य रोगों से संत्रस्त है—अज्ञान, अभाव और मूढता। अनेक मतदाताओं को अपने हिताहित का ज्ञान नहीं है इसलिए वे हितसाधक व्यक्ति या दल का चुनाव नहीं कर पाते। अनेक मतदाता अभाव के कारण अपने मत को पांच दस रुपये में वेच डालते है। अनेक मतदाता मोहमुग्ध हैं इसलिए उनका मत वोतलों के पीछे लुढक जाता है।

हिन्दू

२८३ जो व्यक्ति हिंसा से दु.खी होता है, परितापित होता है, वह हिन्दू है।

२८४ यदि हिंदू शब्द को धर्म के साथ न जोड़कर संस्कृति और समाज के साथ जोडा जाए तो सभी भारतीय इस शब्द के नीचे एकत्रित हो सकते हैं।

२८५ सदियों से चली आ रही अज्ञानपूर्ण रूढ मान्यताओं, स्पृश्या-स्पृश्य जैसी अमानवीय धारणाओं और जातिवाद जैसी संकीर्ण परम्पराओं मे उलझा हुआ हिन्दू शब्द अपनी सार्वभौम सत्ता के आगे कुछ प्रश्नचिह्न उपस्थित कर रहा है। यदि उपर्युक्त मान्यताओं और धारणाओं में अपेक्षित संशोधन कर दिया जाए तो हिन्दुत्व की गरिमा और अधिक बढ़ सकती है।

२८६ हिन्दू शब्द के साथ जिस तरह की सौदेवाजी और राजनीति उभर रही है, उससे हिन्दू संस्कृति की गरिमा धूमिल हो रही है।

२८७ वेदों को प्रमाण मानने वाला ही हिन्दू है—इस परिभाषा के साथ हिंदू शब्द को धर्म के साथ जोड़ना उसे साम्प्रदायिक और संकीर्ण वनाना है।

२८८ हिंदू शब्द राष्ट्रवाची होना चाहिए। जो हिन्दुस्तान में रहे, वह हिन्दू। यदि हिन्दू शब्द को राष्ट्रवाची मान लिया जाए तो करोड़ों-करोडों मुसलमान, ईसाई आदि लोग जो हिन्दुस्तान में रहते हैं, उन्हें भी हिन्दू कहलाने मे कोई कठिनाई नही होगी।

हिन्दू धर्म

२८९ हिन्दू धर्म के मूल तत्त्व हैं—

१ व्यापक सहिष्णुता।

२ समन्वय।

३ सत्य के प्रति विनम्र दृष्टिकोण।

हिन्दू संस्कृति

२९० हिसा के विना जीवन नही चल सकता, फिर भी यथासम्भव हिंसा से वचना, जीवन के दैनिक व्यवहार—खान-पान से लेकर वड़े से वड़े कार्य में अहिंसा का विवेक रखना—हिन्दू संस्कृति का एक महान् पहलू है।

२९१ हिंदू संस्कृति पर समय-समय पर कई विपदाएं आई पर वह कभी मिटी नही, टूटी नहीं। उसमें वह शाश्वतता है, जो उसे जिंदा रखे हुए है।

२९२ हिन्दू संस्कृति से यदि अहिंसा के तत्त्व को अलग कर दिया जाए तो वह धूमिल और तत्त्वहीन-सी दिखाई देने लगेगी। अहिंसा का अपना तेज है, वर्चस्व है, वही इस संस्कृति की आभा है।

२९३ पाश्चात्य संस्कृति का आयात हिंदू संस्कृति के पवित्र माथे पर एक ऐसा धब्बा है, जिसे छुडाने के लिए पूरी जीवन-शैली को बदलने की अपेक्षा है।

२९४ हिंदू संस्कृति का यही महत्त्व है कि वह आपत्ति और संपत्ति मे संतुलित रहने का सूत्र सिखाती है।

२९५ विलासी मनोवृत्ति वाले लोग जिस प्रकार की प्रसाधन-सामग्री का उपयोग कर रहे हैं, वह हिंदू संस्कृति के प्रतिकूल है।

२९६ अस्पृश्य मानकर हरिजनों का स्पर्श नहीं करना, उनके साथ नहीं बैठना, उन्हें कुएं से पानी नही भरने देना, उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं देना, और तो क्या, उनको जिन्दा जला देना, क्या यह हिंदू संस्कृति के प्रति क्रूर मजाक नहीं है ?

२९७ खाने-पीने, उठने-बैठने तथा आचार-व्यवहार में यदि संयम नहीं है तो वह हिंदू संस्कृति नहीं हो सकती।

२९८ हिन्दू संस्कृति के सिंहासन पर जब तक वैदिक विचार ही छाया रहेगा, तब तक जैन और बौद्ध उसके निकट कैसे आ सकेंगे ?

२९९ हिन्दू-संस्कारों की जमीन को छोडकर आयातित संस्कृति के आसमान में उड़ने वाले लोग दो-चार लम्बी उड़ानों के बाद अपनी जमीन पर उतरने या चलने का सपना देखेंगे तो उनके सामने अनेक प्रकार की मुसीबतें खड़ी हो जाएंगी।

हिम्मत

३०० हिम्मत यह नहीं कि व्यक्ति जान-बूझकर खतरे के मुंह पर जाकर पड़े। हिम्मत का अर्थ है आने वाले खतरे से पहले ही व्यक्ति अपना बचाव कर ले।

३०१ आत्मबल और हिम्मत के सहारे बुराइयों से टक्कर लेकर अच्छाइयों के राजमार्ग पर चरणन्यास किया जा सकता है।

३०२ जब व्यक्ति हिम्मत के साथ अपने लक्ष्य के प्रति गतिमान् होता है, तब कोई भी कठिनाई उसके पथ की बाधा नहीं बन सकती।

३०३ प्रवाह के प्रतिकूल चलने की हिम्मत कोई विरल व्यक्ति ही जुटा सकता है।

ही और भी

३०४ 'ही' और 'भी' में इतना ही अन्तर है कि जहां 'भी' है वहां समाधान होता है, लचीलापन होता है, जहां 'ही' है, वहां तनाव होता है, झगड़े पैदा होते है।

३०५ 'ही' आग्रह का द्योतक है और 'भी' अनाग्रह का।

हीन

३०६ दूसरे प्राणियों को हीन मानने से स्वयं का अहं प्रबल होने की संभावना रहती है।

३०७ दूसरों को हीन या अधिकार-शून्य बनाये रखने की बात गलत है। उसका निश्चित परिणाम संघर्ष है।

३०८ स्वयं को हीन मानना या दूसरे के प्रति हीनता का भाव रखना एक कोटि का अभिशाप है।

हीनभावना

३०९ हीनभावना छूटते ही प्रगति के द्वार खुल जाते है।

३१० हीनभावना का विमोचन हुए बिना व्यक्ति कर्म-क्षेत्र में उतर नहीं सकता।

३११ ऊपर ही ऊपर देखने वाला व्यक्ति कितना ही महान् क्यों न हो, वह हीनभावना से दब जाता है।

३१२ जिस प्रकार अभिमान एवं गर्व वर्ज्य है, उसी प्रकार हीन-भावना भी आत्मशक्ति को निस्तेज करने वाली है।

३१३ हीन शब्द का प्रयोग भी हीनभावना को पैदा करता है।

३१४ हीनभावना व्यक्ति को कुंठित और निराश बना देती है।

३१५ हीनभावना से ग्रस्त कोई भी व्यक्ति अनुकूल वातावरण में भी आगे नहीं बढ़ सकता।

३१६ हीनभावना सबसे पहली और सबसे बड़ी पराजय है।

३१७ जो व्यक्ति प्रारम्भिक असफलता को देख हीनता की ग्रंथि से ग्रथित हो जाता है, वह सफलता को नही पा सकता।

हीनता

३१८ हीनता मनुष्य के व्यक्तित्व को चौपट कर देती है।

३१९ आरोपित भेदों को वास्तविक मानकर किसी को हीन मानना स्वयं की हीनता है। उनके आधार पर किसी का अहित करना स्वयं का अहित है।

हुक्का

३२० गुड़गुड़-गुड़गुड़ बड़े प्रेम से, दिन भर हुक्का पीते।
ऐसा लगता है मानों वे हुक्के से ही जीते॥

हुकूमत

३२१ किसी पर हुकूमत करना अन्याय है, शोषण है।

हृदय

३२२ अपना हृदय सबसे बड़ा पवित्र मंदिर है।

३२३ मुंह की आवाज हृदय की आवाज हो, तब वह दूसरों के हृदय तक पहुंचती है।

३२४ हृदय सुख का अक्षयकोष है।

३२५ हृदय का दर्पण जितना स्वच्छ और निर्मल होगा, उतना ही उसमें पड़ने वाला साधना का प्रतिबिम्ब भी स्वच्छ और निर्मल होगा।

३२६ मेरी दृष्टि में संकीर्णता स्थान से नहीं, हृदय से आती है।

हृदय-परिवर्तन

३२७ हृदय-परिवर्तन का अर्थ किसी दूसरे हृदय का प्रत्यारोपण नहीं, किंतु विचार-परिवर्तन है, जो अहिंसा द्वारा ही संभव है।

३२८ एक-एक व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन समाज-परिवर्तन का आधार बनता है।

३२९ हृदय-परिवर्तन का सिद्धांत आंतरिक पवित्रता, शुद्ध मैत्री और समानता का धरातल ठोस बनाता है।

३३० हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया की गति धीमी होती है, इसलिए इसमें कुछ समय लगता है; पर यह स्थायी और प्रतिक्रिया-मुक्त होती है।

३३१ समस्या का स्थायी समाधान हृदय-परिवर्तन द्वारा ही हो सकता है।

३३२ हृदय-परिवर्तन हुए बिना विश्वशांति या समग्रक्रांति की कल्पना भी साकार नहीं हो सकती।

३३३ हृदय बदल जाने के बाद हर काम सहज और सुगम हो जाता है।

३३४ शिक्षा और उपदेश द्वारा ही हृदय-परिवर्तन किया जा सकता है।

३३५ हृदय श्रद्धा से बदलता है, व्रत से नहीं।

३३६ दण्ड से, कोसने से या अन्य प्रतिशोधात्मक तरीकों से व्यक्ति के हृदय को बदलना मुश्किल है।

३३७ व्यक्ति का हृदय बदले बिना कानून, व्यवस्था या दबाव के आधार पर किसी को धार्मिक, नैतिक या प्रामाणिक नही बनाया जा सकता।

३३८ हृदय-परिवर्तन के बिना नए मूल्यों की प्रस्थापना असंभव नहीं तो दु:संभव अवश्य है।

३३९ हृदय-परिवर्तन ही लोकजीवन के प्रशस्तीकरण का सक्षम हेतु है।

३४० विकारों के ध्वंस का सही साधन हृदय-परिवर्तन है।

३४१ आत्मिक दुर्व्यवस्था की परिसमाप्ति का एकमात्र साधन हृदय-परिवर्तन है।

३४२ धर्मक्षेत्र में वितंडावाद—लड़ाई-झगड़े को कोई स्थान नहीं है। यहां तो एकमात्र हृदय-परिवर्तन का मार्ग ही मान्य है।

३४३ हृदय बदले बिना केवल व्यवस्था बदलने से वांछित परिणाम नहीं आ सकता।

३४४ हृदय-परिवर्तन का पहला सूत्र है—हृदय में विवेक-दीप का जलना।

३४५ हृदय-परिवर्तन का सिद्धांत जितना सौम्य है, उतना ही स्थायी है।

३४६ बिना हृदयपरिवर्तन के धार्मिकता पोष न पासी।
कालसौकरिक बिम्बसार की बात न भूली जासी।।

३४७ जब तक मनुष्य सत्ता, अर्थ, जाति, धर्म आदि को केन्द्रबिंदु बनाकर चलता रहेगा, उसका हृदय परिवर्तित नहीं हो सकेगा।

हृदयमिलन

३४८ दूर रहते भी कभी क्या हृदय मिलते हैं नहीं ?
अभ्र में रवि अम्बु में क्या पद्म खिलते हैं नहीं ?

हृदयशुद्धि

३४९ धर्म बलप्रयोग से नहीं पनपता। उसके लिए हृदयशुद्धि आवश्यक है।

३५० नैतिकता और मानवता का आधार हृदय-शुद्धि है।

हृदयशून्यता

३५१ मैं बुद्धि का उपासक हूं किन्तु हृदयशून्यता को उचित नहीं मानता।

हृदयहीन

३५२ हृदयहीन व्यक्ति के पास मानसिक शांति का कोई साधन नही होता।

३५३ हृदयहीन व्यक्ति आंख होते हुए भी अन्धा, कान होते हुए भी बहरा और अस्वस्थ होता है।

३५४ बुद्धिमत्ता के साथ जब व्यक्ति हृदयहीन बन जाता है, तब वह न अपना भला कर सकता है और न समाज का ही।

३५५ जहां व्यक्ति सहृदय हो, वहां हृदय-परिवर्तन का सिद्धांत काम कर सकता है। हृदयहीनता और पशुता की स्थिति में तो बल या शक्ति ही कारगर हो सकती है।

हेतु

३५६ धतूरे के बीज से आम का वृक्ष नहीं उग सकता। इसी प्रकार अशुद्ध हेतु से शुद्ध साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

हेय-उपादेय

३५७ हेय जब छूट जाता है तो उपादेय अपने आप सामने आ जाता है।

हैसियत

३५८ सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि हस्ती पर हैसियत हावी हो रही है। हम क्या हैं इससे अधिक मूल्य हमारे पास क्या है इसका हो गया है।

होली

३५९ अपनी वासना और कषाय की होली जलाना ही सच्ची होली है।

होनहार

३६० व्यक्ति होनहार पर विश्वास न करे क्योंकि होनहार तो हारे का विश्राम है।

हौसला

३६१ हर परिस्थिति मे हौसला रखने वाला व्यक्ति ही सही जीवन जी सकता है और अपने दायित्व का निर्वाह कर सकता है।

ह्रास

३६२ विकास के लिए यह आवश्यक है कि हम ह्रास के हेतुओं के प्रति सतर्क रहें।

आत्मदीप

दीवसमा आयरिया,
दिप्पंति परं च दीवेंति ।
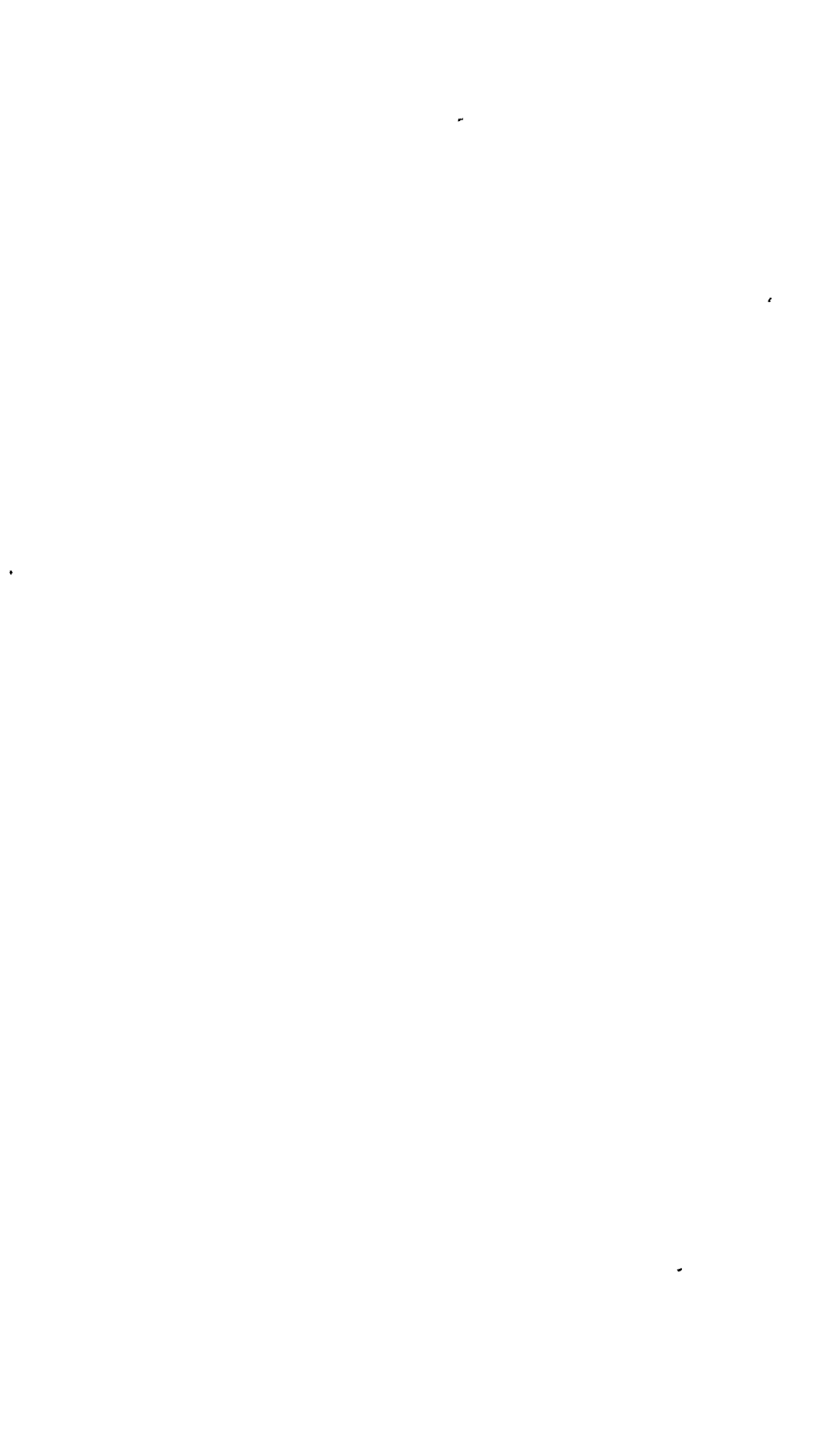
आत्मदीप

१ मैं आज तक जो कुछ बना हूं, सब कुछ पूज्य गुरुदेव की कृपा का ही परिणाम है।

२ राजस्थान विद्यापीठ परिवार ने मुझे भारतज्योति अलंकरण से सम्मानित किया। पर मैं चाहता हूं कि मैं आत्मज्योति बनूं, यही मेरा लक्ष्य है।

३ मैं अपने गुरु का कितना ऋणी हूं, बता नही सकता। मुझ पर अनन्त उपकार है उनका।

४ मैं अपनी धर्मशासना के पचासवें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूं। इस सत्रह हजार नौ सौ चौबीस दिनों की यात्रा में मैंने एक-एक क्षण को जागरूकता से जीया है, इतना दर्प तो नहीं कर सकता। फिर भी इतना जरूर मानता हूं कि इस अवधि में मैंने कई खूबसूरत ख्वाब देखे। कुछ पूरे हुए, कुछ टूटे और कुछ अधूरे रह गये। उस स्वप्न-यात्रा को सत्य का परिवेश देने के लिये मुझे कभी वेग से चलना पड़ा, कभी जान बूझकर पीछे हटना पड़ा और कभी संघर्षों को आमंत्रित करना पड़ा। जीवन के हर पडाव की कथा कहीं मुस्कानों से निखरी है तो कहीं व्यथा के भार से बोझिल भी हुई है।

५ मेरे गुरु ने अभय और सहिष्णुता का अनुत्तर विकास किया था। मेरे लिए वह सहज बोधपाठ बन गया।

६ मैंने अपने जीवन में आस्था के बल से न जाने कितनी दुर्गम घाटियां लांघी हैं। मेरा यह अनुभव है तो दूसरों को क्यों नहीं होगा ?

७ लोग मुझे महात्मा कहते हैं। मै नही जानता कि मैं महात्मा हूं या नहीं। अपनी मान्यता में मैं आत्मा हूं, परमात्मा बनना चाहता हूं।

८ मैं आचार की समता लेकर चलता हूं, अतः दो विरोधी विचार भी मेरे सामने एक घाट पानी पी सकते हैं।

९ स्याद्वाद से मैं यह सीख पाया हूं कि सत्य उसी व्यक्ति को प्राप्त होता है, जिसके मन में अपनी मान्यताओं का आग्रह नही होता।

१० अणुव्रत के क्षेत्र में मैं अणुव्रत के अनुशास्ता के रूप में ही हूं, तेरापंथ के आचार्य के रूप में नहीं।

११ अहिंसा का साधक कटु सत्य भी नहीं बोल सकता, फिर वह कटु आक्षेप कैसे लगा सकता है ? इस बोधपाठ ने मुझे संयत और सन्तुलित रहना सिखाया।

१२ 'गुरुदेवः शरणमस्तु'—इस वाक्य को बार-बार स्मृति में लाता हूं, लिखता हूं, वही मेरी संजीवनी शक्ति है। उसी से कुछ यश पा लेता हूं। मेरी कार्यप्रेरिका तो यही शक्ति है।

१३ मैं कैसा हूं—यह मेरे लिए पर्यालोच्य है, पर इतना अवश्य जानता हूं कि टेढ़े की अपेक्षा सीधा अधिक हूं।

१४ जब मैं किसी पुरुषार्थहीन मानव को देखता हूं तो मेरे हृदय में टीस सी पैदा होती है।

१५ एकता और समन्वय के लिए यदि मुझे न्यायोचित बलिदान भी करना पड़े तो मैं सहर्ष तैयार हूं।

१६ मैंने अपने गुरु से कोरा सिद्धांत ही नहीं पढ़ा, मुझे उनके जीवन-व्यवहार से अहिंसा का सक्रिय प्रशिक्षण भी मिला।

१७ व्यथित रहकर जीना भी कोई जीना है। मैं एक वर्ष जीऊं, पांच वर्ष जीऊं या पचास वर्ष जीऊं, इसकी मुझे चिन्ता नही। जितना जीऊं, प्रसन्नता और आनन्द से जीऊं, यही मेरी चाह है।

१८ जो लक्ष्य बन जाता है, उस तक पहुंचे बिना अटकना या रुकना मेरा स्वभाव नहीं है।

१९ कृष्ण को त्यागकर धवल का वरण करना मुझे सदा प्रिय रहा है।

२० मैंने अपने जीवन में अनेक कड़वे-मीठे अनुभव पाए है, अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं, संसार को नई करवट लेते हुए देखा है, राजनीति और समाजनीति की शक्लों को बदलते हुए देखा है, विज्ञान और ऊंची तकनीक को विकसित होते हुए देखा है। औद्योगिक उन्नति को शिखर पर पहुंचते हुए देखा है और देखा है सम्भावित नाभिकीय युद्ध के खतरों से बढने वाली त्रासदी को।

२१ मैंने अपने गुरुवर से अभय का वोधपाठ पढा, तब मै समझ सका कि अभय पीठिका है अहिंसा और सत्य की। इसके बिना अहिंसा और सत्य की कल्पना ही नही की जा सकती।

२२ हिंसा और परिग्रह को कभी विभक्त करके नहीं देखा जा सकता। इसी प्रकार अहिंसा और अपरिग्रह को विभक्त नही किया जा सकता। ये सव वातें मुझे मेरे दीक्षागुरु पूज्य कालूगणी से सीखने को मिली।

२३ मै जानता हूं, मेरे पास न रेडियो है, न अखबार और न आज के प्रचार योग्य वैज्ञानिक साधन है और न मै इन सवका उपयोग ही कर सकता हूं। लेकिन मेरी वाणी मे आत्मबल है, आत्मा की तीव्र शक्ति है और मुझे अपने सन्देश के प्रति आत्म-विश्वास है। फिर कोई कारण नही, मेरी यह आवाज जनता के कानों से नही टकराए।

२४ मैंने अपने छोटे से जीवन में गुस्सैल व्यक्ति वहुत देखे है पर उत्कृष्ट कोटि के क्षमाशील कम देखे हैं। गर्वित व्यक्तियों से मेरा आमना-सामना बहुत हुआ है पर विनम्र व्यक्ति कम देखे हैं। लोगों को फंसाने के लिये व्यूह-रचना करने वाले मायावी व्यक्ति वहुत मिले पर ऋजुता की विशेष साधना करने वाले कितने मिलते है? लोभ के शिखर पर आरोहण करने वाले अनेक व्यक्तियों से मिला हूं पर संतोष की पराकष्ठा पर पहुंचे हुए व्यक्ति कम देखे हैं। इसी प्रकार पढ़े लिखे लोगों के साथ मेरा संपर्क आये दिन होता है पर बहुश्रुत व्यक्तियो से साक्षात्कार करने का प्रसंग कभी-कभी ही मिल पाता है।

२५ मैं इक्कीसवीं सदी की नहीं, कल की बात करना अधिक पसंद करता हूं।

२६ केवल जैन या केवल ओसवालों में बोलकर मैं उतना खुश नहीं होता जितना सर्वसाधारण में बोलकर होता हूं।

२७ खालीपन में भी व्यस्तता निकाल लेना मेरा दैनंदिन का क्रम है।

२८ मैं अपने विषय में अनुभव करता हूं कि जैसे-जैसे मैंने अहिंसा का मर्म हृदयंगम किया है, वैसे-वैसे अधिक मध्यस्थ बना हूं।

२९ यदि शांति के लिए मेरा शरीर भी चला जाए तो मैं उसे ज्यादा नहीं मानता।

३० मेरी अभीप्सा है कि मैं हर स्थिति में सम रहूं। भले मुझे जीवन भर भी संघर्ष क्यों न करना पड़े।

३१ सत्य की अनुपालना के लिए मुझे प्रशिक्षण मिला—डरो मत। न बुढापे से डरो, न रोग से डरो, न शोक-संताप से डरो और न मौत से डरो।

३२ मैं सिद्ध नहीं, साधक हूं, पण्डित नहीं, विद्यार्थी हूं।

३३ मेरी थोड़ी-सी वेदना से पूरा समाज प्रभावित होता है। किंतु मेरे मन में कितनी पीड़ाएं हैं। इनको पहचानने का प्रयत्न कौन करता है?

३४ मैं चाहता हूं हमारा भविष्य अहिंसा, संयम, तपस्या, समन्वय और मानसिक सन्तुलन के विकास का भविष्य बने।

३५ मैं भविष्य की अपेक्षा वर्तमान में अधिक विश्वास करता हूं, इसलिये निश्चिन्त हूं।

३६ अनुशासन का मेरे जीवन में शुरू से गहरा स्थान था, स्वयं अनुशासित रहना तथा अपने से छोटों को अनुशासन में रखना मुझे सहज भाता था।

३७ मेरे कदम निरन्तर सत्य की राह को मापते रहें और मैं अपने जीवन के एक-एक क्षण को सफल सार्थक करूं, यही आशा और अभीप्सा है।

३८ विरोध को सहते-सहते इतनी परिपक्वता आ गई है कि कभी नींद उड़ती ही नहीं। और मैं तो विरोधकर्त्ताओं को भी अपने जीवन का निर्माता मानता हूं।

३९ मैं कोरा भारतीय ही नही हूं, जागतिक भी हूं। इसलिए केवल भारत से ही नहीं, समूचे जगत् से यह अनुरोध करने का अधिकारी हूं कि अणुव्रती बने बिना कोई भी आदमी अच्छा आदमी नहीं बन सकता, भले फिर वह इस आंदोलन का सदस्य बने या न बने।

४० मुझे चर्चा में कोई पराजित करने के लिए आता है तो मैं विनम्रता से उसे स्वीकार कर लेता हूं किन्तु अपने सत्य विचारो को दृढ़ता से रखता हूं।

४१ मै जब-जब बाहर यात्रा में जाता हूं, मेरा अध्ययन बढ़ता है, अनुभव बढ़ते हैं।

४२ सीधे पथ पर चलने की मेरी आदत नहीं है। कठिन काम करने में मुझे आनंद आता है।

४३ मैं बुझा हुआ जीवन जीने में विश्वास नही करता।

४४ ओढी हुई उपाधियां मुझे व्याधियां लगती हैं। मैं किसी भी उपाधि को ओढ़ने में दिलचस्पी नहीं रखता।

४५ मेरा प्रयत्न मेरे भीतरी संकल्प के साथ होता है, इसलिए उसकी सफलता में मुझे कोई सन्देह नहीं है।

४६ निष्काम कर्म फलदायी होता है, इस आस्था को लेकर ही मैं घूम रहा हूं और काम कर रहा हूं।

४७ मेरे मन में अनेक बार विकल्प उठता है कि सूरज आता है, प्रकाश होता है। उसके अस्त होते ही फिर अन्धकार छा जाता है। प्रकाश और अन्धकार की यात्रा का यह शाश्वत क्रम है। ये काम करते-करते नहीं अघाते तो फिर हम क्यों अघाएं ?

४८ मेरी दृष्टि में जीवन एक अखंड अविभक्त सत्य है। मैं उसी को जीना चाहता हूं।

४९ मैं आत्मविश्वास को मर्यादा की मर्यादा मानता हूं।

५० मैं पवित्रता को छोड़कर कहीं भी जाना नहीं चाहता।

५१ मैंने आत्मविश्वास जगाने का प्रयास किया है। मेरा आत्म-विश्वास जागा है और दूसरों का जगाया है।

५२ मैं किसी की सरसता में निमित्त बनूं, इसमें मुझे रस है।

५३ शांति और जिज्ञासाभाव से मुझे कोई कुछ भी पूछे, मैं बताने को सदा तैयार हूं। कीचड़ में पत्थर फेंकना मेरा काम नहीं है।

५४ मेरा कार्य समन्वय का है। मैं आगे चलता हूं परन्तु पीछे देखता हुआ चलता हूं, ताकि साथ चलने वाला कोई पीछे न रह जाये।

५५ मैं न तो गलती को दबाने के पक्ष में हूं, न फैलाने के। मैं तो उसे सुधारने के पक्ष में हूं।

५६ मैं अनेकान्त में विश्वास करता हूं। मुझे स्याद्वाद इष्ट है, इसलिए सहज ही आग्रहमुक्त होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

५७ जहां विरोध और आलोचना का स्तर ऊंचा रहा, वहां वह एक दिन मैत्री में बदल गया, यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है।

५८ मेरी ताजगी का रहस्य है—प्रसन्नता। यदि मैं प्रसन्न रहना नहीं जानता तो जी नहीं सकता।

५९ अकषायी बनना तो अभी कठिन है, असंभव तो नहीं है, किन्तु मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं अकषाय की ओर बढ़ता चला जाऊं।

६० मैं कथनी और करनी की समानता में विश्वास करता हूं।

६१ विरोधों से डरने वालों को मैं उचित परामर्श देना चाहता हूं कि वे एक तटस्थ द्रष्टा की भांति उसे देखते रहें और आगे बढ़ते रहें, भविष्य उन्हें स्वतः बतला देगा कि बढे हुए ये कदम प्रगति को किस प्रकार अपने में समेटे हुए चलेंगे।

६२ मैं अपनी भूल को भूल रूप में महसूस कर लेता हूं। कभी-कभी लोगों के सामने व्यक्त भी कर देता हूं। कभी अपने आप ही समझ लेता हूं। यह मेरी विशेषता नहीं, बल्कि प्रकृति है।

६३ मैं कल जितना खुश था, उतना ही आज भी हूं। मेरे लिए सभी दिवस उत्सव के हैं, सभी दिन स्वतंत्रता के हैं।

६४ मैं तो बुरे लोगों का इंतजार करता हूं, कोई आए तो उसका परिवर्तन करूं।

६५ सहज सरसता मुझे काम्य है, इसी प्रकार निमित्त-जन्य सरसता भी मेरे लिए मूल्यार्ह है।

६६ आने वाले युग की तस्वीर मेरी आंखों के सामने है। इसलिए मैंने अनेक महत्त्वपूर्ण कामों को गौणकर एक बुनियादी काम हाथ में लिया। वह काम था—शिक्षा के बहुआयामी विकास का।

६७ मैं अपने पूर्वज आचार्यो का अनुग्रह तथा प्रकृति का योग मानता हूं कि मुझे श्रम करने की शक्ति और संस्कार मिले तथा मैंने उस शक्ति का उपयोग भी किया।

६८ मैं देश-काल की सीमाओं को देखकर कभी मर्यादाओं के आकार-प्रकार में परिवर्तन भी ला देता हूं, परन्तु विश्वास में परिवर्तन लाना नहीं चाहता।

६९ अहिंसा में मेरा अन्धविश्वास नहीं है। वह मेरे जीवन की प्रकाश-रेखा है। मैंने उससे अपने जीवन को आलोकित करने का प्रयत्न किया है। मैं उससे बहुत संतुष्ट और प्रसन्न हूं।

७० अति हर्ष और विषाद, अति श्रम और विश्राम आदि अतियों से बचे रहने के कारण मै आज भी अपने आपको तारुण्य की दहलीज पर खड़ा अनुभव कर रहा हूं।

७१ मेरे उपदेश को यदि एक भी व्यक्ति ग्रहण नहीं करता है तो मुझे किंचित् भी दुःख नहीं होता, क्योकि उपदेश देना मेरी साधना है, वह अपने आपमें सफल है।

७२ मेरी प्रकृति ही कुछ ऐसी वन गई है कि चार बजे के वाद तो मेरा सोने का मन ही नहीं करता। भले मैं रात को दस वजे सोऊं, बारह बजे सोऊं या दो बजे, चार बजे तो प्रायः उठ ही जाता हूं। मैं नींद का जमा खर्च भी नहीं रखता। कल देर से सोया तो आज दिन में दो घंटे सोकर उसकी पूर्ति करूं, यह मेरे मन को नहीं भाता।

७३ सुधार के पुनीत यज्ञ में मुझे गुरु का आदर्श, अनुभूतियों का वल और साधु-साध्वियों का योगदान सदैव प्राप्त होता रहा है।

७४ मैं श्रद्धाञ्जलि मात्र से तृप्त नहीं होता। वाहरी तड़क-भड़क और नारे आदि मुझे पसन्द नहीं। मैं चाहता हूं कि श्रद्धाञ्जलि की अपेक्षा काम अधिक हो।

७५ मैं अपनी प्रवचन सभाओं में ऐसे प्रयोग करता रहता हूं जिससे कट्टरपंथी विचारकों को भी मुक्तभाव से सोचने का अवसर मिले।

७६ प्रकृति से मैंने विनम्रता का गुण सीखा और अपने व्यक्तिगत जीवन में उतारकर देखा कि जिसमें लचीलापन है, उसे कोई तोड़ नहीं सकता।

७७ मैं जिसे सीधा मार्ग मानता हूं, उसमें आप कठिनता महसूस करते हैं और मुझे जो कठिन लगता है, वह आपके लिए सुगम है।

७८ मैं अपने लिए मुस्कराहट को वहुत अधिक मूल्यवान् मानता हूं।

७९ सत्य से विनम्रता और अभय से दृढ़ता मिलती है—ऐसा मेरा विश्वास है।

८० जी चाहता है, अपनी सारी अनुभूति सवके गले उतार दूं।

८१ हिंदुस्तान की एक विशेषता मैंने देखी है कि मुझे इस देश में कोई नास्तिक नहीं मिला। ऐसे लोग मुझे मिले, जिन्होंने प्रथम वार में धर्म के प्रति असहमति प्रकट की। किन्तु मानव धर्म और अणुव्रत धर्म के रूप में धर्म की व्याख्या सुनकर वे स्वयं को धार्मिक मानने में गौरव का अनुभव करने लगे।

८२ अगर आप मेरी वात मानें तो विवाहों में, दहेज में, नाच में, गान में, वाजों में फिजूलखर्ची विलकुल न करें, यह अपव्यय है।

८३ भक्तजनों की सुधि लेने के लिए मुझे १२ मील ही नहीं, २५ मील भी जाना पड़े तो स्वीकार है।

८४ स्त्री जाति की शक्ति में मुझे संदेह नही है पर उन्हें कुछ सहयोग की अपेक्षा है।

८५ मैंने अन्तर्दीप्ति से प्रज्वलित रहने का मंत्र भस्माच्छन्न अग्नि से सीखा है।

८६ मैं कभी-कभी क्लान्त होता हूं। कभी-कभी उदास या निराश भी होता हूं। इसका मूल कारण मेरी अपनी दुर्बलता ही है। पर मेरे मन पर निराशा की छाया अधिक देर तक टिकती नहीं है।

८७ कृत्रिम वस्तुओं से मुझे आकर्षण नहीं, मुझे तो प्रकृति प्रिय है।

८८ मैं सुख से भी अधिक महत्त्व दुःख को देता हूं। दुःख न हो तो मनुष्य अपने गन्तव्य तक पहुंचने के लिए पथ का निर्माण नहीं कर सकता। दुःख से प्राप्त नये अनुभव व्यक्ति के लिए निर्बाध प्रकाश-रश्मियां हैं।

८९ मैं एक-एक कदम पूर्ण सजगतापूर्वक आगे बढ़ाता हूं। जब कभी रात को जग जाता हूं तो यही चिन्तन किया करता हूं कि कहीं कोई ऐसा कदम तो नहीं बढ़ा दिया, जो प्रगति-पोषक होने पर भी मेरी साधना को भंग करने वाला है या जीवन को लक्ष्य से प्रतिकूल दिशा में ले जाने वाला है। २०-२५ मिनटों तक गम्भीर चिन्तन के बाद जब आत्मा मे पूर्ण सन्तोष हो जाता है, तब जाकर मुझे शान्ति मिलती है।

९० मै उस समझौते में विश्वास नहीं करता, जो भय से प्रेरित हो।

९१ जहां अहिंसा का प्रश्न है, वहां हमारा आचरण और व्यवहार अलौकिक ही होना चाहिए—इस सिद्धांत मे मेरी गहरी आस्था है।

९२ मैं अतीत और वर्तमान—दोनों के संपर्क में रहा हूं। पुरानी स्थिति का मैने अनुभव किया है और नई स्थिति में रह रहा हूं। मैंने दोनों को साथ लेकर चलने का प्रयत्न किया है। इसीलिए मै रूढ़िवाद और अति आधुनिकता—इन दोनों अतियों से बचकर चलने में समर्थ हो सका हूं।

९३ मैं अपने आपको मानवधर्म का प्रवक्ता मानता हूं।

७३ सुधार के पुनीत यज्ञ में मुझे गुरु का आदर्श, अनुभूतियों का बल और साधु-साध्वियों का योगदान सदैव प्राप्त होता रहा है।

७४ मैं श्रद्धाञ्जलि मात्र से तृप्त नही होता। वाहरी तड़क-भड़क और नारे आदि मुझे पसन्द नही। मैं चाहता हूं कि श्रद्धाञ्जलि की अपेक्षा काम अधिक हो।

७५ मैं अपनी प्रवचन सभाओं में ऐसे प्रयोग करता रहता हूं जिससे कट्टरपंथी विचारकों को भी मुक्तभाव से सोचने का अवसर मिले।

७६ प्रकृति से मैंने विनम्रता का गुण सीखा और अपने व्यक्तिगत जीवन में उतारकर देखा कि जिसमे लचीलापन है, उसे कोई तोड़ नहीं सकता।

७७ मैं जिसे सीधा मार्ग मानता हूं, उसमें आप कठिनता महसूस करते है और मुझे जो कठिन लगता है, वह आपके लिए सुगम है।

७८ मैं अपने लिए मुस्कराहट को वहुत अधिक मूल्यवान् मानता हूं।

७९ सत्य से विनम्रता और अभय से दृढ़ता मिलती है— ऐसा मेरा विश्वास है।

८० जी चाहता है, अपनी सारी अनुभूति सबके गले उतार दूं।

८१ हिंदुस्तान की एक विशेषता मैंने देखी है कि मुझे इस देश में कोई नास्तिक नहीं मिला। ऐसे लोग मुझे मिले, जिन्होंने प्रथम बार में धर्म के प्रति असहमति प्रकट की। किन्तु मानव धर्म और अणुव्रत धर्म के रूप में धर्म की व्याख्या सुनकर वे स्वयं को धार्मिक मानने में गौरव का अनुभव करने लगे।

८२ अगर आप मेरी बात माने तो विवाहों में, दहेज में, नाच में, गान में, बाजों मे फिजूलखर्ची बिलकुल न करें, यह अपव्यय है।

८३ भक्तज़नों की सुधि लेने के लिए मुझे १२ मील ही नहीं, २५ मील भी जाना पड़े तो स्वीकार है।

८४ स्त्री जाति की शक्ति में मुझे संदेह नही है पर उन्हें कुछ सहयोग की अपेक्षा है।

८५ मैंने अन्तर्दीप्ति से प्रज्वलित रहने का मंत्र भस्माच्छन्न अग्नि से सीखा है।

८६ मैं कभी-कभी क्लान्त होता हूं। कभी-कभी उदास या निराश भी होता हूं। इसका मूल कारण मेरी अपनी दुर्बलता ही है। पर मेरे मन पर निराशा की छाया अधिक देर तक टिकती नहीं है।

८७ कृत्रिम वस्तुओं से मुझे आकर्षण नहीं, मुझे तो प्रकृति प्रिय है।

८८ मैं सुख से भी अधिक महत्त्व दुःख को देता हूं। दुःख न हो तो मनुष्य अपने गन्तव्य तक पहुंचने के लिए पथ का निर्माण नही कर सकता। दुःख से प्राप्त नये अनुभव व्यक्ति के लिए निर्बाध प्रकाश-रश्मियां हैं।

८९ मैं एक-एक कदम पूर्ण सजगतापूर्वक आगे बढ़ाता हूं। जब कभी रात को जग जाता हूं तो यही चिन्तन किया करता हूं कि कहीं कोई ऐसा कदम तो नहीं बढ़ा दिया, जो प्रगति-पोषक होने पर भी मेरी साधना को भग करने वाला है या जीवन को लक्ष्य से प्रतिकूल दिशा मे ले जाने वाला है। २०-२५ मिनटों तक गम्भीर चिन्तन के बाद जब आत्मा मे पूर्ण सन्तोष हो जाता है, तब जाकर मुझे शान्ति मिलती है।

९० मै उस समझौते में विश्वास नहीं करता, जो भय से प्रेरित हो।

९१ जहां अहिंसा का प्रश्न है, वहां हमारा आचरण और व्यवहार अलौकिक ही होना चाहिए—इस सिद्धांत मे मेरी गहरी आस्था है।

९२ मैं अतीत और वर्तमान—दोनों के संपर्क में रहा हूं। पुरानी स्थिति का मैंने अनुभव किया है और नई स्थिति में रह रहा हूं। मैंने दोनों को साथ लेकर चलने का प्रयत्न किया है। इसीलिए मै रूढ़िवाद और अति आधुनिकता—इन दोनों अतियों से बचकर चलने में समर्थ हो सका हूं।

९३ मै अपने आपको मानवधर्म का प्रवक्ता मानता हूं।

९४ मैं ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग के समन्वय में विश्वास करता हूं।

९५ जब कभी मैंने अपने आपको बड़ा माना, तत्काल मुझे शिक्षा मिली।

९६ प्रशस्तियां, आरतियां, गुणगान आदि ऐसे खतरे हैं, जो कच्चे आदमी को फुसला लेते है पर मैं इस भुलावे में नहीं आता हूं।

९७ मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि सत्याग्रह की सफलता अहिंसा में है।

९८ समाज का एक भी बच्चा संस्कारहीन रहता है तो यह मेरी अपनी कमी है।

९९ मेरी यात्राओं का पथ निश्चित नहीं है पर मंजिल की निश्चिति मुझे अनवरत पुकार रही है। अपनी अंतर्यात्रा के बारे मे मैं जितना जागरूक हूं, बाह्य यात्रा की दृष्टि से भी उतना ही सक्रिय हूं।

१०० राष्ट्रीय एकता परिषद् में मेरे चयन को मैं चरित्र का चयन मानता हूं।

१०१ मैं चाय का विरोधी नहीं हूं पर चाय के रूप में उस नशे का विरोधी हूं, जो आज लोगों पर हावी होता जा रहा है।

१०२ पूज्य गुरुदेव कालूगणी ने मेरे पर जो कृपा भाव रखा, जिस ढंग से मेरा निर्माण किया और मुनि तुलसी को आचार्य तुलसी तक की यात्रा करवाई, क्या कभी उनके उपकार का बदला चुकाया जा सकता है?

१०३ मैं तो उस दिन का स्वप्न देखता हूं, जब साध्वियों द्वारा लिखी गई टीकाएं या भाष्य सामने आएंगे। जिस दिन साध्वियां इस रूप में प्रस्तुत होंगी—मैं अपने कार्य का एक अंग पूर्ण समझूंगा।

१०४ मेरे मन में बार-बार यह तीव्र प्रेरणा जागती है कि मैं समाज के सभी वर्गों के लोगों में दूध-मिश्री ज्यों घुल-मिल जाऊं। उन्हें अपने अंदर की आत्मीयता दिखाऊं।

१०५ मैंने महिलाओं से बहुत कुछ सीखा है।

१०६ मुझे अच्छा स्थान मिले, किंतु अन्य संतों को न मिले तो उस स्थान में रहने में मुझे आनंद नहीं आता। मुझे आहार मिल जाए और मेरे साधु-साध्वियों में से कोई एक भी भूखा रहे, उसे देख मैं शान्त कैसे रह सकता हूं ? मुझे तो बैचेनी हो जाती है।

१०७ सचमुच जीवन के कीमती क्षणों को बातों मे खोना बहुत बडी निधि से हाथ धोना है। जो लोग ऐसी जिन्दगी जीते हैं, उन्हें देखकर मुझे कई वार मन में आता है, क्या ही अच्छा हो कि इनका समय मुझे मिल जाए। क्योंकि मेरे पास इतना काम है कि दिन-रात व्यस्त रहने के बावजूद भी वह आगे से आगे तैयार रहता है।

१०८ मैं उस दिन की आशा लिए हूं, जिस दिन किसी को फांसी तो क्या जेल की सजा भी नही मिलेगी।

१०९ लोग कहते है कि आकाश में जाने पर चन्द्रयात्रियों का भार शून्य हो जाता है पर हम तो पृथ्वी पर ही भारहीन जीवन जी रहे है।

११० मैं मस्जिद या मंदिर को खुदा या ईश्वर का घर नही मानता, उपासना का घर मानता हूं।

१११ मेरी साधना की स्फूर्ति मेरे हर स्वप्न को साकार बनाने में लगी हुई है। मैं अपनी साधना को और अधिक बलवती बनाना चाहता हूं।

११२ हिंसा के विकास को मैं तानाशाही का पूर्व रूप मानता हूं।

११३ मैं हमेशा कार्य की ठोसता में विश्वास करता हूं, इसलिए कहीं भी असफल नहीं होता।

११४ मैं तो बहुत बार यह सोचता हूं कि साधना न करनी पड़े, सहज हो जाए, वह स्थिति सुन्दर है।

११५ मैं ज्ञान और विवेक के सामंजस्य में विश्वास करता हूं।

११६ मैं न तो भविष्यवक्ता हूं और न बनना चाहता हूं। किन्तु आने वाले युग की वस्तुस्थिति का व्याख्याता बनने में कोई कठिनाई नहीं है।

११७ मैं ऐसी साधना में विश्वास नहीं करता, जो शक्तिशून्य हो।

११८ बहकाकर दीक्षा देना मैं पाप समझता हूं।

११९ मैं चाहता हूं, मेरे धर्मसंघ में सदैव उजला प्रभात रहे, कहीं भी अंधेरा न रहे।

१२० अनुशासन, शील और चरित्र के विकास में मैं अपना योग देने में प्रसन्नता का अनुभव करता हूं।

१२१ मैंने अहिंसा द्वारा हिंसा की अग्नि को शांत करने का प्रयत्न किया है।

१२२ मैं कभी श्रमिकों से घिर जाता हूं, कभी हरिजनों से घिर जाता हूं, कभी बच्चों से घिर जाता हूं, कभी युवक मुझे घेर लेते है, कभी राजनेता व धनपति भी घेर लेते है। मेरे यहां किसी प्रकार का कोई भेद नहीं है।

१२३ मैं अपने लिए कल्पना भी नहीं कर सकता कि किसी भी धर्म-सम्प्रदाय के लोगों के दिलों को आघात पहुंचा सकता हूं।

१२४ मैं संस्कृत वाङ्मय में अपनी संस्कृति के बीज पाता हूं। अतः उसकी श्रेष्ठता स्वीकार करता हूं।

१२५ मैंने अनुभव किया है कि अध्यात्मशून्य बुद्धिवाद मनुष्य को भटकाने वाला होता है।

१२६ प्रवृत्तियों की भिन्नता से मुझे भिन्न समझा जा सकता है, पर लक्ष्य की एकता की दृष्टि से देखने वालों को मुझमें द्वैध नही दिखेगा, यह निश्चित है।

१२७ अहिंसा के बल पर स्वतंत्रता हासिल करने वाले भारत जैसे देश में जिस बर्बरता के साथ मनुष्यता का गला घोंटा जा रहा है, उसे देखकर मुझे पीड़ा होती है।

१२८ मैं अबलापन को मिटाकर महिलाओं को सबल बनाना चाहता हूं।

१२९ मैं सबके विचारों में उन्मेष देखना चाहता हूं और यह भी चाहता हूं कि इतने अधिक विचार सामने आएं कि आचार्य के सामने निर्णय करने में कठिनाई उपस्थित हो जाए। यह विकास का क्रम है।

१३० पानी को भी छानकर पीने वाले, चीटियों की हिंसा से भी कांपने वाले, प्रतिदिन धर्मस्थान में जाकर पूजा-पाठ करने वाले, प्रत्येक प्राणी में समान आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करने वाले धार्मिकों को जब तुच्छ स्वार्थ मे फंसकर मानवता के साथ खिलवाड़ करते देखता हूं, धन के पीछे पागल होकर इंसानियत का गला घोंटते देखता हूं, तो मेरा अन्तःकरण बेचैन हो जाता है।

१३१ मैं शांति और समृद्धिमय जीवन का विरोधी नही हू, पर विलासमय जीवन मनुष्य को दिग्भ्रमित करता है, इसमें मुझे कोई संदेह नही।

१३२ प्रवचन करने में मुझे आत्मतोष मिलता है। इसलिए मुझे इसमें कभी थकान महसूस नहीं होती।

१३३ कर्म में मेरी रुचि है। मेरी साधना गिरि-कंदराओं में कैद नहीं है। मैं चाहता हूं कि अकर्म के साथ अंतिम श्वास तक मै कर्मशील बना रहूं।

१३४ जब मैं संघ के साधुओं की और विशेषतः बाल साधुओं की कोई तकलीफ देखता हूं तो मेरे मन मे दर्द होने लगता है।

१३५ मै उस मेघ को अच्छा नही समझता, जो बीज की बुवाई के क्षणों में बरसे किन्तु फसल को निष्पन्न न करे।

१३६ मेरा निजी अनुभव है कि सकारात्मक नजरिया व्यक्ति, समाज और राष्ट्र में नई चेतना भर सकता है।

१३७ मेरी बलवती इच्छा है कि हमारा धर्मसघ एक तेजस्वी और प्राणवान् धर्मसंघ हो। इसके लिए हमे जितना भी बलिदान करना पड़े, करना चाहिए।

१३८ मै संकल्प की शक्ति से परिचित हूं। संकल्प की सफलता मे मुझे संदेह नहीं है।

१३९ यदि हम कोरे आस्थावादी होते तो पुराणपथी बन जाते। यदि हम कोरे तार्किक होते तो अपने पथ से दूर चले जाते। हमने यथास्थान दोनों का सहारा लिया, इसलिये हम अपने पूर्वजों द्वारा खींची हुई लकीरों पर चलकर भी कुछ नई लकीरें खीचने में सफल हुए है।

१४० मैं इतना कह सकता हूं कि मैंने इन पचास वर्षों में बहुत पाया है। जितना पाया है, पाना उससे भी अधिक शेष है। जो शेष है, उसे प्राप्त करने मे न जाने कितनी शताब्दियां लग जाएंगी। आधी सदी मे सब कुछ पाने की आकांक्षा करूं ही क्यों ?

१४१ मुझे भरोसा है कि आज भी मेरी कार्यजा शक्ति में कोई कमी नहीं आयी है। मै १८ घंटे विना थके काम कर सकता हूं।

१४२ मैं न ज्योतिष पर विश्वास करता हूं और न अविश्वास। मेरा विश्वास अपने पुरुषार्थ पर है।

१४३ सुषुप्ति का जीवन मुझे पसंद नहीं।

१४४ ज्ञान-वृद्धि के लिए शास्त्र विषयक चर्चा का मैं स्वागत करता हूं, किन्तु मल्लयुद्ध के रूप में मुझे शास्त्रार्थ में कोई रुचि नही है।

१४५ समाज के जिस हिस्से में शोषण है, झूठ है, अधिकारों का हनन है, उसे मैं बदलना चाहता हूं और उसके स्थान पर नैतिकता एवं पवित्रता से अनुप्राणित समाज को देखना चाहता हूं। इसलिए मै जीवनभर शोषण और अमानवीय व्यवहार के विरोध में आवाज उठाता रहूंगा।

१४६ मेरे धर्म की परिभाषा यह नही कि आपको तोता-रटन की तरह माला फेरनी होगी। मेरी दृष्टि मे आचार, विचार और व्यवहार की शुद्धता का नाम धर्म है।

१४७ पूज्य गुरुदेव ने मुझ पर जो असीम विश्वास किया, उसे प्रामाणिकता से निभाने के लिए मै कटिबद्ध हूं।

१४८ हमारी जितनी छेड़छाड़ हुई, हमने उतने ही बड़े सपने देखने शुरू कर दिए।

१४९ हमने अपनी शक्ति को अच्छी तरह से तोला और यह भी सोचा कि हम अपनी सीमाओं को जब भी विस्तार देना चाहेंगे, विरोध होगा। विरोध को सहे बिना गति-प्रगति संभव नहीं है।

१५० यात्रा में मेरी अभिरुचि इतनी है कि एक स्थान पर रहकर भी मैं यात्रायित होता रहता हू।

१५१ समय कम और काम अधिक—यह हमारा सदा का उद्घोष रहा है।

१५२ महावीर के शासन को मै संयम का शासन मानता हूं।

१५३ मैं मानता हूं कि व्यक्ति दूर रहता हो या निकट, जैन हो या अजैन, जिसके मन पर मेरी अच्छी बातों का असर होता है, वह मानसिक दृष्टि से मेरे अत्यन्त निकट है।

१५४ अध्यापन के समय भी मै अपने आपको विद्यार्थी ही अनुभव करता हूं।

१५५ मै अपने शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष—दोनों के प्रति सतर्क हूं। अपने अतीत से प्रेरणा लेने का द्वार मै कभी बन्द नहीं करना चाहता।

१५६ वैसे मेरे स्वप्नचित्रों को कैनवास पर उतारने मे पूरा धर्मसंघ मेरे साथ है। फिर भी मुझे कुछ ऐसे युवकों की जरूरत है, जो दृढ़ अध्यवसाय और प्रबल इच्छाशक्ति के साथ मेरे विचारों को झेल सके।

१५७ कला मुझे प्रिय है। फूहड़पन कों मैं पसंद नही करता। किन्तु जिस कला में श्लीलता की सीमाएं टूटती है, उसे मैं मान्यता नही दे सकता।

१५८ मेरी दृष्टि में सबसे बड़ा सुख आत्म-संतुष्टि है।

१५९ मेरी कल्पना का समाजवाद हृदयपरिवर्तन की पृष्ठभूमि पर आधृत होगा।

१६० पशु-चिकित्सक पशुओं का इलाज करते है और हम मनुष्य में छिपी पशुता का।

१६१ मैंने अहिंसा में विश्वास करते हुए जिन-जिन बातों को सही माना है, उन्हें स्वीकार किया है और जिन्हें गलत माना है, उन्हें अस्वीकार किया है।

१६२ अनेक व्यक्ति है, अनेक रुचियां है और अनेक संस्कार है, उन सबमें एकता बनाए रखना मेरी मर्यादा है।

१६३ मुझे लोगों से बुराई छुड़ाने में जो रस मिलता है, वह भोजन में नहीं।

१६४ मेरी तपस्या, मेरी साधना और मेरे विचार ही मेरे कार्य है।

१६५ लोग मुझे विश्राम करने की सलाह देते है पर मैंने जितना अधिक कार्य किया, उतना ही मुझे आराम महसूस हुआ।

१६६ मै अतिक्रमण को क्षम्य नहीं मानता। जिस किसी साधु-साध्वी मे मर्यादा और सिद्धान्त का अतिक्रमण मेरी नजर में आता है, मैं उसे सचेत करता हूं, अनुशासनात्मक कार्यवाही करता हूं।

१६७ सादगी संयम का भूषण है। इससे मुझे सहज और स्वस्थ जीवन जीने का सम्बल उपलब्ध होता है।

१६८ व्यापार मे जो अनैतिकता की जाती है, क्या वह मेरी प्रशंसा मात्र से धुल जाने वाली है? दिन भर की जाने वाली ईर्ष्या, आलोचना, एक दूसरे को गिराने की भावना का पाप, क्या मेरे पैरों में सिर रखने मात्र से साफ हो जायेंगे? ये प्रश्न मुझे बड़ा बेचैन किये देते हैं।

१६९ कभी-कभी जब मै भविष्य की कल्पनाओ पर विचार करता हूं तो वे बड़ी लम्बी-चौड़ी हो जाती हैं। पर ज्योंही अपने चतुर्विध सघ की ओर दृष्टि डालता हूं, तो मेरा मन पुलक-भार से भारी हो जाता है। मै देखता हूं, हमारी सम्पत्ति कितनी विशाल है! केवल उसे संयोजित करने की आवश्यकता है।

१७० मुझे बड़ी चोट लगती है, आघात लगता है, एक धर्मगुरु होने के नाते, तेरापंथी आचार्य के नाते, जब मै देखता हूं कि मेरे अनुगामी कहलाने वाले, मेरे शिष्य कहलाने वाले अगर अपने खानपान को शुद्ध नही रखते।

१७१ मैंने युग को अतीत, वर्तमान और भविष्य के संदर्भ मे समझने का विनम्र प्रयत्न किया है।

१७२ मै उसे आदर्श ही नही मानता, जिस तक पहुंचना संभव न हो।

१७३ वास्तव में मैं गरीबी और अमीरी—दोनों की प्रतिष्ठा नही चाहता। मै तो सद्गुण की प्रतिष्ठा चाहने वाला हूं।

१७४ मै अतिरिक्त आशा का भार नही ढोता, इसलिए निराशा से आक्रान्त नहीं होता।

१७५ प्रत्येक कार्य में पौरुष के साथ आगे बढ़ना मेरी प्रकृति है।

१७६ शताब्दियों से अशिक्षा के कुहरे से आच्छन्न महिला समाज को आगे लाना मेरे अनेक स्वप्नों में से एक स्वप्न है।

१७७ सुयोग्य शिष्य को पाकर मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानता हू और प्रसन्नता का अनुभव करता हू।

१७८ मैं लोगों को अक्सर कहा करता हूं कि तुम जैन बनो या नही, पर 'गुड मेन' जरूर बनो।

१७९ मै संघ की उदितोदित स्थिति से अत्यन्त प्रसन्न हू। पर एक अन्तर है। आप केवल प्रसन्न हो सकते है पर मै केवल प्रसन्न नही हो सकता। मै उन स्थितियों को भी देखता हूं, जो हमारे संघ के विकास में अवरोध पैदा करती है।

१८० मै कभी-कभी वन्दना की स्वीकृति भी नही कर पाता। मेरी स्वीकृति श्रद्धालुओं के लिए निधि हो सकती है, पर मैं उसे भी भूल जाता हूं। इसके लिए मै अपने को अपराधी कहूं तो कह सकता हू।

१८१ मैं नोट और वोट नही मागता। मैं तो केवल आपके जीवन की खोट मांगता हूं।

१८२ इतने लोगों का इकट्ठा होना भी मेरे लिए भार हो जाता है। भार इसलिए कि इतना बड़ा जनसमूह बिना कष्टों की परवाह किये मेरे पास आता है और मै उसकी शुद्धि नहीं कर पाता। जब कभी मै इस चिन्तन में लग जाता हू तो सचमुच हृदय में दुःख होता है।

१८३ धर्म मेरे जीवन का सर्वोपरि पक्ष है। मै धर्मोपदेष्टा आचार्य हूं इसलिए नही, किंतु आत्मशोधक हूं इसलिए।

१८४ सरल बाते संसार करे और कठिन काम हम करें। यह मै अपने लिए तथा अपने धर्मपरिवार के लिए शुभकामना करता हूं।

१८५ मैं चाहता हूं संसार की दो पारस्परिक विरोधी विचारधाराएं जो आस्तिक और नास्तिक, पूंजीवाद और साम्यवाद के नाम से चल रही हैं, उन दोनों में संगम हो, समन्वय हो, तो मानव सुख की सांस ले सकेगा।

१८६ मैंने स्वयं अपने जीवन का कुछ निर्माण किया है, इसलिए दूसरे के जीवन-निर्माण की बात कहता हूं।

१८७ मैं अपने संघ में आचारनिष्ठा के साथ बौद्धिकता के क्षेत्र में आगे बढ़ने वालों की लम्बी पंक्ति देखना चाहता हूं। साधु-साध्वियों की वैचारिक क्षमता आचार्य के तुल्य हो, आचार्य से विशिष्ट हो, यह मुझे मान्य है।

१८८ मेरे अन्तःकरण की बहुत बड़ी तड़प है, भावना है कि समाज का हर भाई और बहन तत्त्व-ज्ञान सीखे।

१८९ मैं स्वयं को तरुण मानता हूं, क्योंकि मेरा चारित्रिक बल प्रबल है।

१९० मैं अपने विकास और उत्थान के लिए चला। वह दूसरों के विकास का भी निमित्त बन गया। इसीलिए लोग मानते होंगे कि मैं उनका विकास कर रहा हूं।

१९१ मेरी एकमात्र आंतरिक तड़प है कि कम से कम मेरे निकट रहने वाले लोगों का तो जीवन ऊंचा हो, साधना गहरी हो। यदि कोई मेरी दृष्टि में सफल बनना चाहता है तो सबसे पहले उसे अपने जीवन को शुद्ध बनाने की आवश्यकता है।

१९२ जैन विश्व भारती के माध्यम से मैं शाश्वत धर्म के तत्त्व को जन-जन तक पहुंचाना चाहता हूं।

१९३ मैं शांतिपूर्ण जीवन जीना चाहता हूं, क्या अहिंसा इससे भिन्न है? मै यथार्थ जीवन जीना चाहता हूं, क्या सत्य इससे भिन्न है? मैं प्रामाणिक जीवन जीना चाहता हूं, क्या अचौर्य इससे कोई पृथक् चीज है? मैं शक्तिसंम्पन्न और वीर्यवान् जीवन जीना चाहता हूं, क्या ब्रह्मचर्य इससे भिन्न है? मैं भारहीन जीवन जीना चाहता हूं, क्या अपरिग्रह इससे भिन्न है?

१९४ मैं न तो राजनीतिक नेता हूं, न मेरे पास कानून और डंडे का बल है। मैं तो अपनी आत्मा का नेता हूं। मेरे पास आत्मानुशासन और आध्यात्मिक बल है।

१९५ मै मकान की नीवों से भी लोगों के चरित्र की नींव को ज्यादा मजबूत देखना चाहता हूं।

१९६ मै मनुष्य की खोज में निकला हूं। देवताओं का सहयोग मुझे नहीं चाहिए।

१९७ जब-जब मैं बीमार पड़ता हूं, मुझे यह समझने का अवसर मिलता रहता है कि मै ही सब कुछ नहीं हूं। कुछ अज्ञात शक्तियां भी है, जो मनुष्य को परास्त कर सकती है अतः मुझे संभल-संभल कर चलना चाहिए।

१९८ सत्य, शिव और सौन्दर्य के विकास के लिए मैंने सदा यत्न किया है। किन्तु मै मानता हूं कि सौन्दर्य से भी पहले सत्य की सुरक्षा होनी चाहिए क्योंकि सत्य के बिना सौन्दर्य का मूल्य नही हो सकता।

१९९ मैं प्रतिज्ञा को कमजोरी नहीं मानता बल्कि बहुत बड़ी वीरता मानता हूं।

२०० मैं आपको यह कैसे समझाऊं कि विलास मे सुख नहीं है। यह कोई पदार्थ होता तो मैं आपके सामने रख देता पर यह तो अनुभव है। अनुभव बिना स्वयं के आचरण के प्राप्त नहीं हो सकता।

२०१ हमने अपने जीवन में कुछ नयी लकीरें खींची। परम्परा की सरहदों से बाहर निकलकर हम समाज और राष्ट्र के साथ जुड़े। विचारों की खुली खिड़कियों से हमने जागतिक परिवेश में झांका और प्रायः सभी वर्गो के व्यक्तियों से मिलकर उनकी समस्याओं के बारे में सोचा-समझा।

२०२ मैं हर क्षण उत्साह की सांस लेता हूं, इसलिए सदा प्रसन्न रहता हूं

२०३ मेरी दृष्टि में नैतिकता के अतिरिक्त राष्ट्र की दूसरी आत्मा संभव ही नहीं।

२०४ कार्यकर्त्ताओं को मैं सम्मान की दृष्टि से देखता हूं, चाहे वे वेतनभोगी भी हों।

२०५ जब मैं कार्य करते-करते थक जाता हूं तो दूसरा काम शुरू कर देता हूं। कार्य-परिवर्तन ही मेरी दृष्टि में विश्राम है।

२०६ मैं यह ढोंग नहीं रचना चाहता कि मेरे मन में निंदा, प्रशंसा या झूठे आक्षेपों को सुनकर कभी कुछ विचार आता ही नहीं। हां, यह अवश्य है कि इन चीजों को मेरे हृदय में कोई स्थान नहीं मिलता और न आदर-सत्कार ही।

२०७ एक व्यक्ति अध्ययनशील तो नही पर साधनाशील है, उससे मै प्रसन्न हूं। एक अध्ययनशील भी है और साधनाशील भी है, मैं उससे बहुत प्रसन्न हूं। एक अध्ययनशील तो है पर साधनाशील नही, मुझे वह व्यक्ति प्रिय नहीं। एक अध्ययनशील भी नहीं और साधनाशील भी नहीं, वह तो किसी काम का ही नहीं।

२०८ मेरा चिन्तन स्पष्ट है कि मानव जाति को कुछ नया देना है तो साम्प्रदायिक दृष्टि से नही दिया जा सकता, व्यापक दृष्टि से ही दिया जा सकता है। इसीलिए हमने सम्प्रदाय की सीमा को अलग रखा और धर्म की सीमा को अलग रखा।

२०९ बड़ी से बड़ी समस्या का सुन्दरतम समाधान खोजा जा सकता है। यह बात मैं अपने जीवन के लम्बे अनुभवों के आधार पर कह रहा हूं। मेरा चिन्तन भी सदैव यही रहा कि समस्याओं को उभारो और उनका सामना करो।

२१० मै तपस्या से भी अधिक महत्त्व प्रामाणिकता को देता हूं।

२११ मै जो कुछ कार्य करता हूं, वह किसी पर अहसान या उपकार नहीं। मै तो केवल वही करता हूं, जो मेरा कर्त्तव्य है और इसी में मुझे आनन्द मिलता है।

२१२ मनुष्य सब दृष्टियों से पूर्ण नहीं होता। कुछ न कुछ अपूर्णताएं रह ही जाती हैं। मेरे में भी कुछ अपूर्णताएं हैं।

२१३ मेरे कार्यक्रम का मूल आधार है—व्यक्ति का विकास। मै जिस प्रकार व्यक्ति का लाभ होते देखता हूं, उसके साथ उसी तरीके से बरतता हूं।

२१४ अहिंसा का जोश आज मेरे हृदय में रह रहकर उफान पैदा कर रहा है। मेरा सीना उससे तना हुआ है और यही मुझे अहिंसा को जनशक्ति में केन्द्रित करने के लिए अज्ञात प्रेरणा जागृत कर रहा है, जिसकी आज सार्वजनिक जीवन में अत्यधिक आवश्यकता है।

२१५ मैं कई बार देखता हूं—लोग आते हैं और मेरे चरणों के नीचे की धूल ले जाते हैं। उसके सहारे अनेकानेक बाधाओं से छूटने की परिकल्पना करते हैं। मै कहता हूं—आप मुझसे उन आदर्शो को लीजिए, जिन्हें मैं जीवन में लिए चलता हूं और जिनकी व्याप्ति मैं लोगों मे देखना चाहता हूं।

२१६ मैं एक पर्यटक हूं। मुझे धनी, गरीव सभी तरह के लोग मिलते हैं। मै जब उन कोट्यधीश धनवानों को देखता हूं तो वे मुझे अन्न व पानी के स्थान पर हीरे पन्ने खाते नजर नही आते। मुझे आश्चर्य होता है कि तब फिर क्यों वे धन के पीछे शोषण और अत्याचारों से अपने आपको पाप के गड्ढे में गिराते हैं।

२१७ खुद पतित और पथभ्रष्ट होकर औरों की हितमाधना की प्रक्रिया का मै कभी समर्थन नहीं कर सकता।

२१८ धर्मगुरु तो आप मुझे कहे या न कहें, लेकिन मै साधक हूं, समाज का सुधारक भी हूं।

२१९ मैं अपने हृदय की बात कहता हूं। कभी-कभी लम्बे समय तक कहीं भी मेरी आलोचना नही सुनता हूं तो लगता है क्या बात है, मैं कहीं गलती पर तो नही चला जा रहा हूं। फिर जब कहीं से थोड़ी आलोचना आ जाती है तो अपना आत्मालोचन करने का अवसर मिल जाता है और तब सोचता हूं, नही मैं विपथ पर तो नहीं हूं।

२२० मै पहले क्षण किसी को उलाहना देता हूं और दूसरे क्षण उसी से हंसकर बोलता हूं, उसको छाती से भी लगा लेता हूं। मैं आचार्य हूं, शास्ता हूं, गुरु हूं. इसलिए ग्रंथि नही बांध सकता। मै रुलाता हूं तो हंसाता भी हूं।

२२१ मेरा विश्वास केवल प्रशंसा में नहीं, अपितु यथार्थ एवं स्पष्ट भाषण में है। इसीलिए मैं शब्दों मे उत्तर देने की अपेक्षा काम में उत्तर देना ज्यादा पसंद करता हूं।

२२२ मैं अपने सम्प्रदाय को मानवता से अलग नहीं मानता। जहां हमारे सम्प्रदाय में कोई बात मानवता से अलग प्रतीत होती है, वहां पर मैं उसे मोड दे देता हूं।

२२३ मेरे बारे में लोगों की विभिन्न धारणाएं है। कुछ लोग मुझे परम्परावादी मानते हैं तो कुछ की दृष्टि में मैं अवसरवादी हूं। कुछ लोग मुझे आग्रही मानते है तो कुछ की दृष्टि में मैं सर्वथा अनाग्रही हूं। कुछ लोग कहते है कि आचार्यश्री तो एक यंत्र है, जो अपना अस्तित्व रखते ही नही, दूसरों के सहारे चलते हैं।

२२४ जब कभी मुझे शिखर को छूने वाली प्रतिष्ठा मिली, उसके तत्काल बाद इतना भयंकर विरोध मिला कि प्रतिष्ठा का अहं जन्म ही नहीं ले पाया।

२२५ मैं स्वयं विद्यार्थी हूं और जीवन भर विद्यार्थी बने रहना चाहता हूं। मेरी नम्र मति के अनुसार प्रत्येक को विद्यार्थी बने रहना चाहिए। विद्यार्थी रहने वाला जीवन भर नया आलोक पाता है, विद्वान् बन जाने के बाद प्राप्ति का मार्ग रुक जाता है।

२२६ मैं अपनी साधना से किसी पर अनुग्रह का भार लादना नही चाहता, इसलिए मुझे कभी निराशा नहीं आती।

२२७ मैं गंदगी का बिलकुल पक्षधर नही हूं। पर इसके समानान्तर यह भी आवश्यक मानता हूं कि सफाई मे साधन का विवेक जागृत रहे।

२२८ चतुर्विध धर्म-संघ की भावनाओं को पूरा करना, संतुष्टि देना आचार्य का कर्त्तव्य है। मैंने इस कर्त्तव्य-पालन में जागरूकता बरती है, फिर भी मैं नही कह सकता कि सबकी भावनाओं को पूरा कर सका हूं और संतुष्टि दे सका हूं, पर जब कभी मुझे संघ के किसी सदस्य से असंतोष का पता चला, उसको सभालने मे मैंने तत्परता अवश्य बरती है।

२२९ मैं चाहता हूं कि चुनौतियां मेरे सामने आएं, क्योंकि चुनौती आने पर ही काम करने का अवसर मिलता है।

२३० भाग्य को मै ठुकराता नहीं हूं किन्तु पुरुषार्थ भाग्य को बनाता है, भाग्य पुरुषार्थ को नही, ऐसा मेरा विश्वास है।

२३१ युवापीढ़ी सदा से मेरी आशा का केन्द्र रही है, चाहे वह मेरे दिखाए मार्ग पर कम चल पायी हो या अधिक चल पायी हो। फिर भी मेरे मन में उनके प्रति कभी भी अविश्वास और निराशा की भावना नहीं आती। मुझे युवक इतने प्यारे लगते है जितना कि मेरा अपना जीवन। मै उनकी अद्भुत कर्मजा शक्ति के प्रति पूर्ण आश्वस्त हूं।

२३२ बुजुर्ग भी मुझे कब अच्छे नही लगते। वे कितने खपे है, कितने तपे है! उन्हें कोई कितना ही कोसे, कितना ही भला-बुरा कहे, चुपचाप सहते चले जाते हैं।

२३३ कर्मशील व्यक्ति स्वस्थ और प्रसन्न रह सकता है—इस विश्वास के साथ मै सतत निर्माण-कार्य मे लगा रहता हूं और प्रसन्नता का अनुभव करता हूं।

२३४ मै धर्म को जीवन का अभिन्न तत्त्व मानता हूं, इसलिए मै बार बार कहता हूं, भले ही आप वर्ष भर में एक दिन भी धर्मस्थान में न जाएं, मै उसे क्षम्य मान लूंगा। बशर्ते कि आप अपने कार्यक्षेत्र को ही धर्मस्थान बना लें, मन्दिर बना लें।

२३५ लगभग पौने दो सौ वर्षों की परंपरा, ज्ञान और अनुभव की थाती लेकर मैं चला। इस थाती की सुरक्षा और वृद्धि के लिए मुझे किसी नये पथ का निर्माण नही करना पड़ा। उस बने बनाये पथ को विस्तार देने एवं वहां बिखरे कंकर-पत्थरों को हटाने के लिये एक नई शैली अपनानी पडी। उसने मुझे अपने धर्मसंघ की अस्मिता और नियति के बारे में एक स्थिर किंतु गतिशील विचारधारा दी। उसे मै गौरव के साथ जी रहा हूं।

२३६ कैसी भी स्थिति-परिस्थिति आए, इस शरीर का खंड-खड भले हो जाए, लेकिन श्रद्धा अखंड बनी रहे, यही मेरी आत्मा की भावना है।

२३७ मैं भगवान् बनना नहीं चाहता, इंसान बनकर रहना चाहता हूं।

२३८ मैं कहूंगा कि मैं राम नहीं, कृष्ण नहीं, बुद्ध नहीं, महावीर नहीं, मिट्टी के दीए की भांति छोटा दीया हूं। मैं जलूंगा और अंधकार को मिटाने का प्रयास करूंगा, यह मेरा काम है।

२३९ न तो मै किसी धर्म-विशेष को प्रोत्साहन देता हूं और न किसी की निंदा करता हूं। मानव धर्म पर मेरा विश्वास है और उस पर ही चलने के लिए सबको प्रेरणा देता हूं।

२४० मै हृदय से चाहता हूं कि जैन-शासन की अखंडता निर्बाध रहे। इसके लिए मै अपनी ओर से बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तैयार हूं।

२४१ मै सारे संसार को सुखी बनाने की अति कल्पना नहीं करता तो कुछ नही कर सकने की हीनता भी मेरे मन में नही है। मैं हीनता और गर्व के बीच मध्यस्थता में रहना चाहता हूं।

२४२ मेरा विरोध करने वालों को विरोध करने से यदि कुछ प्राप्त होता है तो मुझे संतोष है।

२४३ मेरी मान्यता है कि धर्म को निठल्ले लोगों की नही, कर्मशील लोगों की जरूरत है।

२४४ मैं प्राप्त पूजा से और अधिक विनम्र बनूं, साधना के पथ पर और आगे बढ़ूं, लोक-कल्याण में और अधिक निमित्त बनूं, यही संकल्प मेरे अग्रिम जीवन का प्रकाश-दीप होगा।

२४५ जनता मुझसे युग-चेतना का जागरण चाहती है। मैं उससे मर्यादा-बोध की अपेक्षा करता हूं।

२४६ हमें धर्मक्रांति का सिंहनाद करना है, पर उस धर्म का नहीं. जिसका अस्तित्व केवल मंदिरों, धर्मस्थानों या धर्मग्रंथों तक ही सीमित है।

२४७ श्वास की बीमारी को मैं अपना मित्र मानता हूं। यह मुझे बार-बार चेतावनी देती है कि मै अहंकार न करूं कि मैं स्वस्थ ही हूं। मैं अस्वस्थ भी होता हूं।

२४८ चलने में हम थकान नहीं, आनंद का अनुभव करते है।

२४९ हमारी शक्ति सम्प्रदायों के महल खड़े करने में नहीं, धर्म को उजागर करने में लगे ।

२५० मेरी यह अन्तर् तड़प है कि जैन-धर्म संकीर्ण दायरे से निकल कर विशाल दायरे में आए और जन-धर्म बने । मै अपने कर्त्तव्य में तभी सफल होऊंगा, जब जैन-धर्म को जातीय घेरे से मुक्त कर सकूंगा ।

२५१ मैंने कभी समाज को छोड़कर गति नहीं की । अपनों को छोड़ कर जो गति करता है या आगे बढ़ता है, उसे मैं गति नहीं मानता ।

२५२ मेरे जीवन की सबसे बड़ी साध है कि मैं अध्यात्म को तेजस्वी और ओजस्वी देखूं । जिस दिन ऐसा होगा, मै कृतकृत्य हो जाऊंगा ।

२५३ मैं अकिंचन हूं अतः वही स्वागत पसन्द करता हूं, जिससे अकिंचनता बढ़े ।

२५४ जब मै इन भोले-भाले, सहज, निश्छल और फटे-कपड़ों में लिपटे ग्रामीणों को देखता हूं तो मेरा मन पसीज उठता है । ये मेरी छोटी सी प्रेरणा से शराब, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं को छोड़ देते हैं तथा अपनी सादगीपूर्ण जिन्दगी और भक्तिभावना से मेरे दिल में स्थान बना लेते है ।

२५५ जुलूस को नहीं, मै तो कार्य को महत्त्व देने वाला हूं । इसलिए मुझे भीड़ नही, काम करने वाले युवक चाहिए ।

२५६ मै शांति का जितना समर्थक हूं, उतना ही शांति की भ्रांति का समर्थन करने में असमर्थ हूं ।

२५७ मैंने अनुभव किया है कि जिस कार्य में विघ्न नहीं आते, वह सफल नही होता ।

२५८ मैं तो जैन शब्द को भी वहीं तक पकडे रहना चाहता हूं, जहां तक कि वह सम्पूर्ण मानव हितो से विसगत नही होता ।

२५९ मै व्रतों की जीवन्तता का पक्षपाती हूं ।

२६० मै मूर्तिपूजा में विश्वास नही करता, इसका अर्थ यह नहीं कि मै उसकी निंदा करूं या मंदिर में जाने का विरोध करूं ।

२६१ यद्यपि मुझे एकान्त बहुत प्रिय है पर सामुदायिक जीवन उससे कम प्रिय नहीं इसलिए मै रहना एकान्त में और करना सबके बीच में चाहता हूं, चाहे फिर वह ध्यान का क्षेत्र हो या कर्म का।

२६२ अनेक प्रकार की समस्याए समय-समय पर मेरे जीवन में आई हैं। पर इन समस्याओं से मैं कभी पराभूत नहीं हुआ। मैंने अपने को कायरता के हाथों कभी नहीं सौपा। आशावादी दृष्टिकोण लेकर मैं उनका समाधान खोजता रहा और इसमें मुझे काफी हद तक सफलता भी मिली है।

२६३ मैं किसी व्यक्ति या जाति को बुरा नहीं बताता। किन्तु जिस वर्ग में बुराई देखता हूं, उसे स्पष्ट कहना मेरा काम है, चाहे वे मेरे भक्त कहलाने वाले हों अथवा स्वागत करने वाले।

२६४ मैं किसी भी काम को कठिन और असंभव मानता ही नही, इसलिए किसी भी क्षेत्र में कोई कठिनाई उपस्थित होती है तो वह स्वयं निरस्त हो जाती है।

२६५ हम स्वागत में फूलते नहीं और विरोध में घबराते नहीं, इसीलिए हमारे सामने उपस्थित होने वाली समस्याओं का यथासंभव स्वयं समाधान निकल आता है।

२६६ मै प्रगति का विरोधी नहीं हूं, किन्तु खोखली प्रगति का हामी भी नहीं हूं।

२६७ मैं साधु-साध्वियों से कहता हूं कि वे यद्यपि अनेक ग्रन्थों को पढते है, पर कुछ गंभीर ग्रंथों को पढ़ने का प्रयास भी करें।

२६८ मै किसी का गुरु नही, मैं तो अपने आपका ही गुरु हूं, अपने विचारों का गुरु हूं।

२६९ मै शिक्षा की कमी सहन कर सकता हूं किन्तु जीवन संस्कार-हीन हो जाए, यह मुझसे नहीं सहा जाता।

२७० मै अभाव की समस्या से पहले कृत्रिम अभाव पैदा करने वाली अनैतिकता की समस्या को सुलझाना अपना आवश्यक कर्त्तव्य मानता हूं।

२७१ व्यक्तिगत आक्षेपों को मै प्रगति नहीं, घोर दुर्गति और कट्टरता मानता हूं।

२७२ मै सौभाग्यशाली हूं कि भारत जसे पवित्र देश मे मुझे जन्म मिला, उसमे भ्रमण किया, उसके अन्न-जल का उपयोग किया और श्रद्धा एवं स्नेह को पाया। इसलिए मेरा फर्ज है कि समस्याओं के निदान और समाधान मे त्याग और वलिदान द्वारा जितना वन सके, मानवता का कार्य करूं। मैंने अपने संपूर्ण सम्प्रदाय को इस दिशा मे मोड़ने का प्रयास किया है।

२७३ मेरा किसी एक राजनैतिक दल से सम्बन्ध नहीं। मेरा सम्बन्ध तो सम्पूर्ण मानव-जाति से है।

२७४ अपनी वर्तमान साधना में मुझे अधिक रस और आत्मतोष मिल रहा है। यह उत्तरोत्तर वढ़ता रहे, यही अपेक्षा है।

२७५ हमने जितना श्रम किया है, जितना पसीना वहाया है, वह प्रशंसा और वाहवाही पाने के लिए नही, अपना दायित्व समझ कर किया है।

२७६ मैं यह नहीं मानता कि सत्ता के बिना समाज-सुधार नही हो सकता।

२७७ मै किसी भी झमेले या विग्रह को लेकर उलझना नही चाहता। हां, यदि मुकावले की स्थिति आ ही जाए तो फिर मै उससे कतराता भी नही हूं।

२७८ मेरे जीवन में अनेक प्रसग आए है, जहां कुछ लोगों ने मेरे प्रति हिसा का वातावरण तैयार किया। वे लोग चाहते थे कि मैं अपनी अहिसात्मक नीति को छोड़कर हिंसा के मैदान मे उतर जाऊं। पर मेरे अन्त:करण ने कभी भी उनका साथ नही दिया और मैने हर हिसात्मक प्रहार का प्रतिरोध अहिंसा से किया।

२७९ मैं विनय को स्थान देता हूं, पर दव्बूपन को प्रोत्साहन नही देता।

२८० हम विरोध को विरोध से काटना चाहते तो हमे कभी सफलता नही मिलती। हमने उसे विनोद मे परिणत कर लिया, उसका प्रतिवाद नही किया और कई वर्पों तक निरंतर चलने वाला वह क्रम एक दिन अपने आप शिथिल हो गया।

२८१ मेरा पथ अकेले का पथ नहीं है, इसलिए मैं किसी तंग मार्ग से नही निकल सकता। मुझे राजमार्ग की आवश्यकता रहती है। इसके लिए घुमाव भी लेने पड़ते हैं।

२८२ मै जनशक्ति के आगे किसी भी सीमा-सूचक विशेषण को छोटा मानता हूं।

२८३ ऐसे धर्म को मैं स्वीकार नही कर सकता, जो वर्तमान को विगाड़कर भविष्य को सुधारता हो।

२८४ मैं उस तपस्या का हामी नही हूं, जो आदमी को दुःख और क्लेश से जोड़ती है।

२८५ हमने इन पचास वर्षों में धर्म को वहुत गम्भीरता से जाना है, देखा है और उसे प्रायोगिक रूप देने का प्रयत्न किया है।

२८६ मैं परम्परा को वहुत मूल्य देता हूं। पर उसकी मूल्यवत्ता तभी तक है, जब तक वह सार्थक और प्रासंगिक हो।

२८७ युग के प्रवाह में वहने को मैं अच्छा नहीं मानता, पर युग के साथ चलने को मैं समझदारी मानता हूं।

२८८ मैं इच्छा का परिमाण करने के लिए कहता हूं, अपेक्षा का नही।

२८९ लोग दुर्दिन की कल्पना करते है किन्तु मैं अध्यात्म के अभाव को ही दुर्दिन और दुर्गति मानता हूं।

२९० मै कभी इस भाषा में नहीं सोचता कि मैं ही सव काम करूंगा। मेरा यही चिन्तन रहता है कि दूसरे भी काम करें और मै भी कुछ काम करूं।

२९१ प्रायः लोग सड़ी-गली या अनावश्यक चीजों को दान में देकर स्वयं को कृतार्थ समझते हैं। मैं इसे उचित नहीं मानता।

२९२ किसी भी स्थिति में हमारे पैर लड़खड़ाएं नही। हम चलते चले, यही हमारा संकल्प है।

२९३ मुझे आचार पर प्राणों की वलि चढ़ा देना स्वीकार्य है, किंतु आचारहीनों का संगठन मुझे कभी अभीष्ट और स्वीकार्य नही है।

२९४ मेरे हृदय के द्वार सबके लिए खुले हुए है। मेरे मन में प्रतिपल, प्रतिक्षण सबके विकास, सबकी जागृति और सबके कल्याण की मंगल-भावना रहती है।

२९५ संयम के प्रति मेरे मन में प्रारम्भ से ही आकर्षण रहा है। मैंने संयम को जीकर देखा है और उसका सुफल भी चखा है। मेरे मन का विश्वास बोल रहा है कि संयम के द्वारा ही विश्व की अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है।

२९६ मेरा काम जोड़ने का है, काटने का नही। सूई का कार्य मुझे पसन्द है, कैंची का नहीं।

२९७ मैं अक्सर कहा करता हूं—केवल मंदिरों मे जाने मात्र से, साधुओं के दर्शन मात्र से, तीर्थस्थानों में चक्कर लगाने मात्र से क्या बनेगा, यदि धर्म के मूल आदर्शों को जीवन में प्रश्रय नहीं दिया गया तो ?

२९८ मैं दया, दान का प्रबल समर्थक हूं, यदि उसकी ओट में शोषण और भ्रष्टाचार न हो।

२९९ बचपन से ही मेरी आदत रही है कि खाली, निकम्मा और निष्क्रिय रहना मुझे अच्छा नही लगता।

३०० आवेशजन्य हिंसा को मैं बहुत बड़ी हिंसा मानता हूं।

३०१ मै सोचता हूं, थोड़े से अंधेरे को देखकर ढेर सारे प्रकाश से आंख नहीं मूंद लेनी चाहिए। आज समाज में उल्लुओं की नही, हंसों की आवश्यकता है, जो क्षीर और नीर में भेद कर सकें।

३०२ इस रहस्य को अनावृत करने में मुझे कोई संकोच नही है कि राजस्थानी कविता में मेरा जो सहज प्रवाह है, हिन्दी में उतना सहज नहीं है। इसलिए मेरे अन्तःकरण में सहज-स्फूर्त भावों की सहज अभिव्यक्ति राजस्थानी में ही हुई है।

३०३ मेरा अपना अनुभव है कि जिसको एक बार गंभीर ग्रंथों को पढ़ने में आनन्द आ जाएगा, उसका मन हल्के स्तर के साहित्य को पढ़ने में लगेगा ही नही।

३०४ मेरी दृष्टि में आधुनिक युग का सबसे बड़ा शरणार्थी है— सत्य। वह निःसहाय है। उसे कहीं सहारा नहीं मिल रहा है। जब तक सत्य शरणार्थी रहेगा, तब तक मनुष्य को सुख-शांति कैसे मिल सकेगी ?

३०५ आप गरीब मानें तो मैं सबसे बड़ा गरीब हूं और अमीर मानें तो मैं सबसे बड़ा अमीर हूं। गरीब इसलिए हूं कि पूंजी के नाम पर मेरे पास एक नया पैसा भी नहीं है और अमीर इसलिए हूं कि मेरी कोई चाह नहीं है।

३०६ जो हरिजनों को मेरा प्रवचन सुनने से मना करेगा, मैं समझूंगा वह मुझे प्रवचन करने के लिए मना कर रहा है। जो हमारे स्थान में आने के लिए हरिजनों को मना करेगा, मैं समझूंगा कि वह मुझे मकान छोडकर चले जाने को कह रहा है। हरिजन भी मनुष्य हैं और सबकी तरह उन्हें भी मेरे पास आने का अधिकार है, प्रवचन सुनने का अधिकार है।

३०७ मैं इस बात का बहुत ध्यान रखता हूं और सजग रहता हूं कि दुनिया मे बौद्धिक वर्ग के सामने जो हमारी उज्ज्वल तस्वीर बनी है, वह हमारी गलती से कभी धूमिल न हो जाए।

३०८ मैं अनुशासन को इसलिए आवश्यक मानता हूं कि मनुष्य एक-दूसरे के अस्तित्व को सहन कर सके।

३०९ मुझे युवकों के नवनिर्माण की चिन्ता है, न कि उन्हें शिष्य बनाए रखने की। मैं युवापीढी के बहुआयामी विकास को देखने के लिए बेचैन हूं। मेरी यह बेचैनी एक-एक युवक के भीतर उतरे, उनकी ऊर्जा का केन्द्र प्रकम्पित हो और उस प्रकम्पन धारा का उपयोग सकारात्मक काम में हो तो उनके जीवन में विशिष्टता का आविर्भाव हो सकता है।

३१० मेरा दृढ़ विश्वास है कि समाज को ऊर्ध्वगामी बनाने में 'जैन विश्व भारती' की कल्पना बहुत महत्त्वपूर्ण होगी।

३११ मेरी इच्छा रहती है कि मेरे निकट रहने वाला हर व्यक्ति हर क्षण प्रफुल्ल रहे। उसकी प्रफुल्लता मेरी मानसिक प्रसत्ति का हेतु बनती है और उसकी मायूसी मुझे व्यथित कर देती है।

३१२ मै चाहता हू कि हर व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो। मैं नही चाहता कि भक्त सदा भक्त ही बना रहे। मै तो चाहता हूं कि सभी भक्त भगवान् बन जाए।

३१३ मेरे मन में बहुत बार ऐसी भावना उठती है कि अणुव्रत अध्यात्म और संयम की ऐसी प्रयोगशाला बने, जहां मनुष्य मानवीय समता का प्रत्यक्ष दर्शन कर सके।

३१४ धर्म-सम्प्रदाय, जाति, भाषा, रंग व भौगोलिकता से बंटी हुई मनुष्य जाति क्या सचमुच एक है ? इस तथ्य की शोध करने के लिए मै गांव-गांव में घूम रहा हूं।

३१५ मुझे तारुण्य अतिप्रिय है। मेरी भावना है—मुझे सदा तारुण्य ही देखने को मिले और मेरे आसपास रहने वाले लोग भी सदा तारुण्य की अनुभूति करते रहे।

३१६ अनुत्साह से बुढ़ापा आता है और मानसिक चिन्ता से बीमारी। मै इन दोनों से मुक्त हूं। इसलिए न तो मैने कभी बुढ़ापे का अनुभव किया और न आगे करूंगा—ऐसा मेरा आत्मविश्वास है।

३१७ मैं शाश्वत के प्रति आस्थावान् हूं और इसीलिए हूं कि परिवर्तन को मै ध्रुव सत्य मानता हूं।

३१८ मेरे दर्द को कौन पहचाने ? मुझे जुकाम लग जाने पर सौ बार लोग पूछते हैं कि आपका स्वास्थ्य कैसा है ? मै कभी कभी तो बताते-बताते थक जाता हूं। किन्तु अन्दर के दर्द को कोई नही पूछता।

३१९ जिस किसी व्यक्ति में मुझे अच्छाई दिखाई देती है, मैं उसका आदर करता हू।

३२० मै शाब्दिक अभिनन्दन में विश्वास नही करता। मै बहुत बार कहता हू—मेरा सच्चा अभिनन्दन तभी होगा, जब अभिनन्दनकर्ता मन, वचन और कर्म से एकरूप होगा।

३२१ आत्मभाव का तिरस्कार कर यदि साहित्य का सृजन या प्रकाशन होता है तो मुझे वह प्रिय नहीं है।

३२२ साम्प्रदायिक एकता से मेरा अर्थ समन्वय-दृष्टि का विकास है।

३२३ क्षमा, श्रद्धा व अनुशासन आदि सद्गुणों को मैं मानव-जीवन की सफलता की कुंजी मानता हूं।

३२४ मैंने निर्णय लिया है कि मैं जब तक रहूं, अन्तिम श्वास तक मुझे काम करना है। कितना किया है इसका लेखा-जोखा करना मेरा काम नहीं है।

३२५ मैं किसी सफलता को परिणाम में नहीं, उसके प्रयत्न में देखता हूं।

३२६ मैंने आकाश की ओर देखकर भी जमीन को नजरंदाज नहीं किया। यही कारण है कि मैं युगबोध से परिचित रहकर ही अपने समाज को साथ लेकर चलता रहा हूं।

३२७ मुझे विरासत में जो कुछ मिला वह इतना महान् था कि उसके सामने मेरी छोटी अवस्था की बात बिल्कुल गौण हो गई।

३२८ मेरी प्रकृति है कि मेरे से घोर विरोध रखने वालों के प्रति भी मेरे मन में कभी दुर्भावना नहीं जागती।

३२९ मुझे तो समन्वय का नशा सा हो गया है, अतः जहां समन्वय संभव है, वहां तो समन्वय खोजता ही हूं किन्तु जहां असमन्वय है, उसमे भी समन्वय ही देखता हूं।

३३० मै पूंजीपति को या शक्तिशाली को बड़ा नही समझता, मैं बड़ा उसे मानता हूं जो वैमनस्य को मिटाने के लिए पहल करता है।

३३१ हमने अपने जीवन में दो काम करने का प्रयत्न किया है। पहला काम है—अध्यात्म की प्राचीन संस्कृति को नवीनतम रूप में प्रस्तुति। दूसरा कार्य—धर्म और सम्प्रदाय दो है, एक नहीं, इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति।

३३२ नैतिक पुनर्निर्माण की कल्पना मुझे बहुत प्रिय है। उसकी क्रियान्विति को मै अपने ही लक्ष्य की क्रियान्विति मानता हूं, भले फिर वह कहीं से हो और किसी के द्वारा हो।

३३३ हमारा यह दावा नहीं कि हम दुनियां में शांति स्थापित कर ही देंगे। पर हमारा यह विश्वास अवश्य है कि हमारी अहिंसा-साधना के प्रयोग पूरे विश्व की शांति-कामना के साथ जुड़े हुए हैं।

३३४ मै अहं-विसर्जन का पक्षपाती हूं पर उसके साथ दीनता का हामी नहीं हूं।

३३५ मै विद्रोह के साथ पनपने वाली निरंकुश उच्छृंखलता का पक्षधर नही हूं।

३३६ हिंसा से अहिंसा की ओर जाने को मै बहुत बड़ी क्रांति मानता हूं।

३३७ मेरा यह अभिमत रहा है कि संघर्ष करना या आलोचना करना इतना बुरा नहीं है, जितना बुरा है निम्नस्तर पर उतर कर संघर्ष और आलोचना करना।

३३८ मेरी ख्याति को मैं अपनी ख्याति नहीं मानता, वह तो जैन-धर्म और तेरापंथ की ख्याति है।

३३९ अणुव्रत की आस्था अहिंसा में है। मै अणुव्रत के द्वारा ऐसी धर्मक्रांति चाहता हूं, जिससे व्रत हमारे राष्ट्रीय चरित्र के मानदण्ड बन जाएं।

३४० कुछ लोग समझते है कि मैं मात्र मारवाडियों का ही गुरु हूं—यह उनका भ्रम है। मेरे लिए सब मनुष्य समान है। मै उन सबका हूं, जो मानवता में विश्वास करते है।

३४१ बौद्ध, जैन, वैदिक और मुस्लिम इन सबसे पहले मैं मनुष्यता को अधिक महत्त्व देता हूं।

३४२ मैं चाहता हूं कि सम्प्रदायविहीन धर्म की सृष्टि हो। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक विद्वेष न फैले।

३४३ मै विभाजन को बुरा नहीं मानता, अगर उसमें मनुष्यता का धागा सुरक्षित रहता है।

३४४ स्वप्नद्रष्टा होने पर भी मै यथार्थ को विस्मृत कर केवल कल्पना के पंखों पर यात्रा नहीं करता।

३४५ हमारी पकड़ न नये के साथ है और न प्राचीन के साथ। हम स्थायी और परिवर्तनशील के भेद को समझकर सापेक्षदृष्टि से काम करते आए है। इसमे हमें सफलता मिली है।

३४६ मैं चाहता हूं कि भारत के सभी धर्म फलें-फूलें। मैं अपनी बात कहता हूं कि मैं कभी किसी धर्म पर आक्षेप करना चाहता नहीं, करता नहीं और करने देता नहीं।

३४७ मै सबसे पहले मानव हूं। इसलिए हर मानव के साथ मेरा प्यार है।

३४८ जहां साम्प्रदायिक संकीर्णता नहीं, वह समारोह फिर किसी भी जाति का हो, किसी भी सम्प्रदाय द्वारा आयोजित हो, नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए मैं उनके साथ हूं और रहूंगा।

३४९ किसी को कष्ट न हो, यह मेरी अपनी वृत्ति है।

३५० मैं किसको प्रिय और किसको अप्रिय मानूं, कुछ समझ में नही आता। प्रियाप्रिय की चर्चा छोड़कर मुझे समता में रहना चाहिए।

३५१ सृजन में मेरी अभिरुचि है। मैं प्रारम्भ से ही सृजनधर्मिता से प्रतिबद्ध रहा हूं। मेरी यह प्रतिबद्धता अक्षर-विन्यास से शुरू होकर व्यक्तिनिर्माण तक पहुंच गई।

३५२ मैं अपनी समालोचना सुनना पसंद करता हूं, प्रशस्ति नही। मैंने यह भी कह दिया कि मेरे सम्बन्ध में जो साहित्य लिखा जाए, वह भी समालोचनात्मक हो, ताकि उससे मुझे कुछ प्रेरणा मिले और मैं अपने को देख सकूं।

३५३ दूसरों के भरोसे बढ़ने या चमकने का मंत्र हमने नहीं सीखा। हमें अपने पुरुषार्थ पर भरोसा है और उसी को प्रधान मानकर हम चल रहे हैं।

३५४ मै अनुभव करता हूं कि व्यक्ति के पास कमी समय की नहीं, उसके सम्यक् नियोजन की है।

३५५ एक ओर मुझे एकांत प्रिय है तो दूसरी ओर मैं भीड़ से घिरा रहता हूं। सही स्थिति यह है कि मै भीड़ मे भी एकान्त की अनुभूति करता हूं।

३५६ मैने तेरापंथ-शासन के व्यापक सिद्धान्तों का पूरी मानव-जाति के हित में प्रयोग किया है, उससे शासन की सुषमा बढ़ी है और जनता को पथदर्शन भी मिला है।

३५७ मेरा क्षण-क्षण किसी अच्छे कार्य मे लगे, यह मेरी तीव्र भावना है।

३५८ मेरे किसी भी दिन को निमित्त बनाकर सकारात्मक चिंतन और रचनात्मक कार्य को बल मिलता है तो उस दिन की स्वयंभू सार्थकता हो जाती है।

३५९ मेरी बाते किसी को अमृत तुल्य लगती होंगी तो किसी को जहरतुल्य भी। परन्तु मुझे जो अनुचित लगता है, उसे मैं निःसंकोच निर्भय होकर कहता हूं। क्योंकि मै किसी वर्ग आदि से जुड़ा हुआ नही हूं।

३६० हमारे सामने उन लाखों-करोड़ों लोगों की तस्वीर रहनी चाहिए, जिन्हें पददलित और अस्पृश्य कहकर लोगो ने ठुकरा दिया है। ऐसे लोगों को हमे ऊपर उठाना है, सहारा देना है।

३६१ मैं परिणाम की अपेक्षा प्रवृत्ति की पवित्रता का चितन अधिक करता हूं।

३६२ जिस प्रकार हमने आज नौका द्वारा नदी को पार किया है, उसी प्रकार संसार समुद्र को भी हंसते-हसते पार कर जाएं। जैसे हम पार करे, वैसे ही दूसरों को भी पार उतारे।

३६३ मै कहता हूं कि लोग युग को पहचाने, पैसे का मोह छोड़ें अन्यथा आगे आने वाला जमाना स्वयं छुड़ा देगा।

३६४ वचपन से ही अहिंसा के प्रति मेरी आस्था पुष्ट हो गई। आस्था की वह प्रतिमा आज तक कभी भी खंडित नहीं हुई।

३६५ मेरी आस्था इस वात में है कि सम्प्रदाय अपने स्थान पर रहे और उसका उपयोग भी हो, किंतु वह सत्य का स्थान न ले। सत्य का माध्यम ही बना रहे, स्वयं सत्य न वने।

३६६ मै हिन्दीभाषी हूं, कितु मेरा हिन्दीभापा का आग्रह नहीं। लेकिन मैं चाहता जरूर हूं कि समूचे राष्ट्र में ऐसी कोई एक भापा हो, जिससे एक दूसरे के विचारों को समझा जा सके।

३६७ स्खलना करने पर मैं शैक्ष मुनियों को टोकता हूं, सावधान करता हूं। इसके साथ ही मैं उनके चेहरों को भी पढ़ता रहता हूं। किस साधु ने मेरे अनुशासन को मन से सहन किया है, किसने केवल वाणी से सहन किया है और किसने मन व वाणी—दोनों से ही सहन नहीं किया है। इस आधार पर मैं परीक्षा कर लेता हूं, कौन होनहार है, कौन कम होनहार है।

३६८ मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यदि हम तेरापंथ समाज को अपनी कल्पना के अनुरूप ढाल पाते तो आज उसका स्वरूप इतना भव्य और सुघड होता कि मैं वता नहीं सकता।

३६९ मै उपचार को अधिक महत्त्व नही देता, किंतु कर्त्तव्य को उपेक्षित होता भी नहीं देखना चाहता।

३७० मेरी एक ही चाह है कि मैं आत्मलक्षी वन स्वहित, संघहित और धर्महित में काम करता रहूं।

३७१ मेरे कंधों पर संघ के अनुशासन की पूरी जिम्मेवारी है। मेरी आत्मा जितनी अधिक उज्ज्वल होगी, शासन भी उतना ही समुज्ज्वल होगा।

३७२ मेरा स्वागत ही स्वागत होता तो शायद अहंभाव वढ़ जाता। मुझे पग-पग पर विरोध ही विरोध झेलना पड़ता तो हीनता का भाव भर जाता। मै इन दोनों स्थितियों के वीच रहा। न अहं और न हीनता। इसलिए मै वहुत वार अपने विरोधियों को वधाई देता हूं।

३७३ जैनों का ही कल्याण होता है, दूसरों का नही, यह चिन्तन की संकीर्णता है।

३७४ मै अहिंसा की अन्तर्यात्रा में विश्वास करता हूं।

३७५ मैं सम्प्रदाय में रहता हूं पर सम्प्रदाय मेरे दिमाग में नहीं रहता। इसलिए मै सम्प्रदाय का विरोधी नही, विरोधी हूं साम्प्रदायिकता का।

३७६ बुराई को प्रश्रय देना मैं अनुचित मानता हूं। मेरा प्रहार व्यक्ति पर नहीं, उसकी बुराई पर होता है।

३७७ मेरी प्रकृति ही ऐसी है कि मैं कड़ाई को अधिक टिका नहीं सकता। किसी को कड़ा उपालम्भ देता हूं, किंतु उसके तुरंत बाद सहला भी देता हूं। यदि कड़ाई को जमा करके रखूं तो शायद मेरा दिमाग पूरा काम भी नहीं कर पाए।

३७८ राष्ट्रीय एकता मेरे लिए कोई नया विचार नहीं है, बल्कि मैं तो मानवीय एकता का समर्थक हूं। मेरा पूरा जीवन इस एकता की भावना को बनाने और बढ़ाने मे व्यतीत हुआ है। आज भी मैं यही कार्य कर रहा हूं।

३७९ मैं व्यक्ति के अधिकार को कुचलना नहीं चाहता, मै तो उसे आत्मानुशासित बनाना चाहता हूं।

३८० मैं जब तक रहूं सफलता-असफलता की चिंता किए बिना नए-नए स्वप्न संजोता रहूं और उन्हें सफल देखता रहूं। प्रगति मेरी सहगामिनी बनी रहे, यही मेरी अभीप्सा है।

३८१ मुझे गति में श्लथता पसंद नहीं है।

३८२ मैं बहुत बार कहता हूं—मेरे स्वागत में बोलना बहुत सुगम काम है, पर मेरे दर्द को पहचानना कठिन है।

३८३ मैं हर एक की त्रुटि का प्रतिकार करना चाहता हूं पर उसको लेकर किसी का अहित करना नहीं चाहता, क्योंकि सब मेरे ही अवयव है।

३८४ पांचों अंगुलियों को एक बनाने जैसी काल्पनिक एकता को मैं बहुमूल्य नहीं मानता। मेरे अभिमत में एकता का अर्थ पारस्परिक सहयोग या सापेक्षता होना चाहिए।

३८५ मै व्यक्तिगत रूप में सभा में कुछ भी न कहूं तो भी सामूहिक रूप से बुराई पर प्रहार किए बिना नही रह सकता। यदि मैं अपने प्रवचन में नैतिकता और अनैतिकता की बात नही कहूंगा तो मेरे प्रवचन की सार्थकता ही क्या है ?

३८६ मैं परिस्थितियों का कायल नही हूं, इसलिए मैंने कष्टों से घबराना नहीं, मुकाबला करना सीखा है।

३८७ मैं रोटी, पानी, हवा से भी अत्यन्त आवश्यक मानता हूं धर्म को।

३८८ मैं सदैव कुछ नया सीखने के लिए लालायित रहता हूं इसीलिए जो कोई भी नई प्रवृत्ति, नया विचार या नया चिंतन मेरे सामने आता है, उसे मैं तत्काल डायरी में अंकित कर लेता हूं।

३८९ मैं अपने साधु-साध्वियों को इतना पूर्ण देखना चाहता हूं कि जो शासनविहीन समाज की कल्पना है, वह हमारे संघ में साकार हो सके।

३९० मैं लोगों को अनेक वार चेतावनी देता हूं कि यदि धन से धर्म होता तो अन्य क्रय-विक्रय की चीजों की तरह ये पूंजीपति लोग धर्म को भी गोदाम में कैद कर लेते।

३९१ सम्प्रदाय के अतिरिक्त भी धर्म है, जिसे मैं निर्विशेषण धर्म या मानवधर्म कहता हूं।

३९२ मैं लोगों के विरोध करने के भय से अच्छा कार्य बंद नहीं कर सकता। धमकियों के सामने हम न कभी झुके हैं और न भविष्य में झुकने वाले है।

३९३ मेरी सफलता का एकमात्र कारण है—व्यापक दृष्टिकोण।

३९४ हमें तपना है और अधिक तपना है। अपने लिए तपना है, धर्मसंघ के लिए तपना है और सम्पूर्ण मानवता के लिए तपना है। हम जितनी तपस्या करेंगे, हमारा मार्ग उतना ही प्रशस्त होगा।

३९५ मेरे मन को कोई भी परिस्थिति जल्दी से खिन्न नहीं बना सकती क्योंकि मेरे भीतर संयम और त्याग की शक्ति काम कर रही है।

३९६ मैं पैसे की अपेक्षा चरित्र को मुख्य स्थान देता हूं।

३९७ विरोधियों के विरोध को हंसते-हंसते सहना मेरी सहज वृत्ति है। मेरा अनुभव है कि विरोधियों के बने रहने से व्यक्ति को फूलने का, संतुलन खोने का अवसर नहीं आता।

३९८ जब मैं विरोधी वातावरण में भी युवकों को शांत और सहनशील देखता हूं तो मुझे सात्त्विक गर्व हुए बिना नहीं रहता।

३९९ मेरी धर्मक्रांति के पांच सूत्र हैं—

१. धर्म को अंधविश्वास की कारा से मुक्त कर प्रबुद्ध लोक-चेतना के साथ जोड़ना।

२. रूढ उपासना से जुड़े हुए धर्म को प्रायोगिक रूप देना।

३. परलोक सुधारने के प्रलोभन से ऊपर उठाकर धर्म को वर्तमान जीवन की शुद्धि में सहायक बनाना।

४. युगीन समस्याओं के संदर्भ में धर्म को समाधान के रूप में प्रस्तुत करना।

५. धर्म के नाम पर होने वाली लड़ाइयों को आपसी वार्तालाप के द्वारा निपटाकर सब धर्मों के प्रति सद्भावना का वातावरण निर्मित करना।

४०० मैं सामाजिक जीवन में आमोद-प्रमोद की समाप्ति की बात नहीं कहता, न उसमें रुकावट डालता हूं किन्तु यदि हमने युग की धारा को नहीं समझा तो हम पिछड़ जाएंगे।

४०१ समाज की आलोचना का पात्र बनकर भी मैंने समय-समय पर प्रदर्शन मूलक प्रवृत्तियों, अंधपरम्पराओं और अंधानुकरण की वृत्ति पर प्रहार किया है।

४०२ यदि मैंने समय के साथ चलने की समाज को सूझ नहीं दी तो मै अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाऊंगा।

४०३ मेरा अपना अभिमत है कि जब तक हिन्दुस्तान के पास अहिंसा की सम्पत्ति सुरक्षित है, कोई भी भौतिकवादी शक्ति उसे परास्त नहीं कर सकेगी।

४०४ बहिनो ! जमाना बहुत तेजी से आगे बढ़ रहा है। दो मिनट पीछे रहीं तो सौ वर्ष पीछे रह जाओगी।

४०५ मेरा अपना कुछ भी नही है, जो कुछ है, वह संघ के लिए है, साधु-साध्वियों के लिए है, श्रावक श्राविकाओं के लिए है।

४०६ मेरा निश्चित अभिमत है कि हिंसक क्रांति से शांति संभव नही है।

४०७ मेरे अभिमत से सबसे बड़ा रचनात्मक कार्य है—मनुष्य का निर्माण।

४०८ आये दिन बढ़ रहे मूल्यों के संकट से देश को उबारने के लिये नैतिक मूल्यों की मशाल प्रज्वलित करने का चिंतन मैंने अणुव्रत के माध्यम से जनता के सामने रखा, इसका मुझे संतोष है।

४०९ कर्महीन व्यक्ति धर्म को स्वीकार करे, मैं इस अनास्था को अणुव्रतों के माध्यम से मिटाना चाहता हूं।

४१० मेरा विश्वास कोरा नैतिकता के उपदेश में नहीं, उसके प्रशिक्षण में है।

४११ मैं जहां कहीं जाता हूं, केवल देने के लिए नहीं, लेने के लिए भी जाता हूं।

४१२ अपनी धर्मानुभूति को मैं दूसरों पर थोपना नहीं चाहता। मनवाने में मेरा विश्वास बहुत कम है। किन्तु प्रेरणा में मुझे विश्वास है।

४१३ मैं व्यवस्था को अनावश्यक नहीं मानता, किन्तु व्यवस्था ऐसी रूढ़ नहीं बन जाए, जिससे उसकी मूल चेतना का ही विनाश हो जाए।

४१४ मुझे सद्भावना और सहिष्णुता का दृष्टिकोण पसंद है।

४१५ मैं युवकों का हमारे पास न आना सह सकता हूं पर वे कर्त्तव्य-हीन और पुरुषार्थहीन हो जाएं, यह सहन नहीं कर सकता।

४१६ किसी की उपेक्षा करना मेरे लिए अपने अंग की उपेक्षा करने के समान होगा।

४१७ मैं संयम को जीवन का सर्वोत्तम क्रियात्मक पक्ष मानता हूं।

४१८ मैं दृढ़ विश्वास के साथ यह बात कहना चाहता हूं कि महिलाओं की जागृति समाज की जागृति है, महिलाओं की प्रगति समाज की प्रगति है।

४१९ मुझे और कुछ नहीं चाहिए, केवल सच्चा इंसान चाहिए।

४२० मुझे कभी सफलता मिली, कभी न भी मिली, पर सुधार के क्षेत्र में मैं कभी निराश होता ही नहीं, निराश होना मैंने सीखा ही नहीं। मैं आशावान् हूं, और जिंदगी भर आशावान् बना रहूंगा, अडिग विश्वास के साथ काम करता रहूंगा।

४२१ व्यक्ति-विकास को मैं समाज-विकास की नींव मानता हूं।

४२२ हमने शाश्वत को बदलने की बात कभी सोची ही नहीं। सामयिक परिवर्तन तेरापथ की नियति है।

४२३ स्त्रियों की प्रगति के साथ मुझे एक खतरा भी दिखाई दे रहा है। वह यह है कि बहनें एक बीमारी से मुक्त होकर दूसरी की शिकार न बन जाएं। रूढ़ियों से मुक्त होकर वे फैशन की गिरफ्त में न आ जाएं।

४२४ मैं नियमों को आवश्यक नहीं मानता, किंतु यह मानता हूं कि नियम अध्यात्म-विकास के लिए है।

४२५ मैं युगधर्म में चलने वाला हूं। यह मेरा काम है कि जो तत्त्व मुझे मिला है, वह मैं औरों को भी बताऊं और उसके प्रति जनमानस में आस्था भरूं।

४२६ जैन परम्परा का अधिकारी होते हुए भी मै केवल जैनों का नहीं, सबका हूं। मैं किसी वर्गविशेष, जातिविशेष या समाजविशेष का नही, सार्वजनिक हूं, सबका हूं, सब मेरे है, संसार मेरा परिवार है।

४२७ मैं क्रियाकांडों का विरोधी नहीं तो उन्हें प्रमुख स्थान देने के पक्ष में भी नही हूं।

४२८ मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूं, जब समस्त मानव समाज में भावात्मक एकता स्थापित होगी और बिना किसी जाति-भेद के मानव-मानव धर्मपथ पर आरूढ़ होंगे।

४२९ विकास की दृष्टि से व्यक्ति का महत्त्व हो सकता है, पर पूजा की दृष्टि से मैं व्यक्तिवाद को महत्त्व नहीं देता।

४३० मेरी त्यागभरी वाणी से लोगों को कुछ लाभ मिले, मैं इसके सिवाय और कुछ नही चाहता।

४३१ कृत्रिमता से मेरा किञ्चित् भी आकर्षण नही है। मैं प्रकृति का उपासक हूं, प्रकृति से मुझे बहुत प्रेरणा मिलती है।

४३२ व्यक्ति-व्यक्ति का चरित्र ऊंचा उठे, यह मेरी हार्दिक आकांक्षा और प्रयास है।

४३३ मेरे पैंसठ वर्षों के संयमी जीवन का सर्वाधिक सहयोगी और प्रेरक साथी कोई रहा है तो वह है—संघर्ष। मेरा विश्वास है कि मेरे जीवन में इतना संघर्ष न आता तो शायद मैं इतना मजबूत नहीं बन पाता। संघर्ष से मैंने बहुत कुछ सीखा है, पाया है। सघर्ष मेरे लिए अभिशाप नहीं, वरदान सावित हुए हैं।

४३४ मेरा हर श्वास, हर क्षण, मुझे अपना कर्त्तव्य-वोध देता है कि मै सदा स्वपरकल्याण में रत रहूं।

४३५ जव मैं धार्मिकों की रूढ़ पूजा और उपासना को देखता हूं तो बहुत पीड़ा होती है।

४३६ अत्यन्त सद्यस्क विचार जव मेरे सामने आते है तो चाहे मैं उन्हें स्वीकारूं या न स्वीकारूं किन्तु खुले दिमाग से उन्हें सुनना अवश्य चाहता हूं।

४३७ जो मेरा है, वही सत्य है—इस आग्रह का समर्थन मैं नहीं कर सकता। इसलिए मैं आग्रह से वहुत दूर रहता हूं। कभी कभी आग्रह करता भी हूं पर संवंधित विषय की अयथार्थता प्रतीत होते ही मैं तत्काल उसे छोड़ देता हूं।

४३८ केवल ढर्रे का जीवन या यंत्र की भांति निश्चित दिनचर्या का होना मुझे प्रिय नहीं। इस दृष्टि से मैंने अपने जीवन को उत्तरोत्तर संशोधित पाया है।

४३९ लोग जव मुझे संकीर्ण साम्प्रदायिक नजरिए से देखते है तो मेरी अन्तर् आत्मा अत्यन्त व्यथित होती है। उस समय मैं आत्मालोचन में खो जाता हूं—अवश्य मेरी साधना में कहीं कोई कमी है, तभी तो मैं लोगों के दिलों मे विश्वास पैदा नहीं कर सका।

४४० क्या सूरज के अभाव में दीपक अपने सामर्थ्यानुसार संसार का तिमिर दूर नहीं करता? इसी विश्वास के अनुसार मानवता का संदेश लिए मैं घर-घर, गांव-गांव और नगर-नगर में घूम रहा हूं।

४४१ भाषा के संबध में मेरा कोई आग्रह नही है। हम जिस देश में जाएं, उस देश की जनता को समझने-समझाने के लिए उसी भाषा का प्रयोग करें इसमे मुझे कोई आपत्ति दृष्टिगोचर नही होती।

४४२ सबको संयम के पथ पर सुखे-सुखे चलने की सुविधा देता रहूं, यही मै मेरे लिए मंगल कामना करता हूं और संघ के लिए मेरी मंगल कामना यह है कि वह सुखे-सुखे संयम के पथ पर चलने की प्रेरणा पाता रहे।

४४३ मैं अपने दिमाग को बंधा हुआ नही रखता। यदि ऐसा होता तो मैं कुछ काम नही कर पाता।

४४४ हम शिथिलाचार और स्वच्छन्दता के पृष्ठपोषक नहीं है। पर इतने रूढ़ भी नही है कि देश और काल को न समझे।

४४५ संघ का नियन्ता होने पर भी मैं प्रायः निर्भार रहता हूं। मैं अपना सौभाग्य मानता हूं कि मुझे कभी दायित्व का बोझ महसूस नही हुआ।

४४६ मेरे मन की सबसे बड़ी पीड़ा यही है आज मनुष्य मनुष्य नही रहा।

४४७ मैं देश में फैले हुए भ्रष्टाचार को देखकर चिंतित हूं। नैतिकता की लौ किसी न किसी रूप में जलती रहे—मेरा प्रयास इतना ही है।

४४८ मै देश की चप्पा चप्पा भूमि का स्पर्श करना चाहता हूं। अपनी पदयात्राओं के द्वारा मै देश के हर वर्ग, जाति या संप्रदाय के लोगों से इंसानियत और भाईचारे के नाते मिल कर उन्हें जीवन का लक्ष्य परिचित कराना चाहता हूं।

४४९ आज तक जितना काम मै कर पाया हूं, मुझे उससे और अधिक करना है और इसके लिए आज से अधिक आत्म-निष्ठा, विश्वास और जागृति की प्रेरणा लेनी है और ले रहा हूं।

४५० मेरी यात्रा का उद्देश्य केवल घूमना या देशदर्शन नही है। मेरी यात्रा का उद्देश्य है राष्ट्र की संपूर्ण सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का अध्ययन करना।

४५१ धार्मिक समाज के हीनत्व की बात जब भी मेरे कानों में पड़ती है, मुझे अत्यन्त पीड़ा की अनुभूति होती है। इसलिए मैं हृदय से चाहता हू कि धर्मसमन्वय हो।

४५२ शोषण और संग्रह की भीषण समस्या को अहिंसक क्रांति समूल नष्ट करने में शत-प्रतिशत सफल रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

४५३ जब भी मैंने प्रमाद किया, तत्काल चोट खाई।

४५४ निकट भविष्य में जब भी मैं नेल्सन मंडेला से मिल पाऊंगा, रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष के लिए उन्हें साधुवाद दूंगा।

४५५ महिला समाज के अतीत को देखता हूं तो मुझे लगता है, स्त्रियों ने बहुत प्रगति की है। भविष्य की कल्पना करता हूं तो लगता है कि अभी बहुत विकास करना है।

४५६ आज भारत में संतोष, सहिष्णुता, धैर्य और आत्म-विजय के स्थान पर भौतिक संघर्ष, सत्ता-लोभ या पदलिप्सा का विकास हो रहा है, इसे मैं हिन्दुस्तान का दुर्भाग्य कहूंगा।

४५७ यदि मेरे अनुयायी साम्प्रदायिक अशांति में योग देने की भावना रखेंगे तो मैं उनसे यही कहूंगा कि उन्होंने आचार्य तुलसी को पहचाना नहीं।

४५८ मन में अनेक बार आता है कि उपद्रवी और हिंसक भीड़ के बीच जाकर खड़ा हो जाऊं और उन लोगों से कहूं कि तुम कौन होते हो ऐसा करने वाले ?

४५९ मेरा यह चिन्तन है कि सांसदों के लिए भी न्यूनतम योग्यता का निर्धारण होना चाहिए।

४६० मेरे भीतर एक सपना उग रहा है, उसे मैं देखता हूं या वह मुझे देखता है, मैं नहीं जानता। बस, मैं तो इतना भर जानता हूं कि सपना उगता है, काललब्धि का योग मिलता है और वह पौधा बनकर लहलहा उठता है। मैंने अपने मन की धरती पर आज तक न जाने कितने सपनों के बीज बोए, वे अंकुरित हुए और फले-फूले। जब-जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूं, अपनी एक-एक स्वप्न-यात्रा के मर्मस्पर्शी अनुभवों से संवेदित होकर नित नए सपने संजोने लगता हूं।

४६१ राजनीति ने बहुत बार हमारे दरवाजे पर आकर दस्तक दी है, पर हमने उसे विनम्रतापूर्वक लौटा दिया।

४६२ मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूं जब परिवार के परिवार अणुव्रत के आदर्शों पर अपने जीवन का निर्माण करेंगे।

४६३ मैं मांसाहार से भी बड़ा पाप पाखण्ड के प्रचार को मानता हूं।

४६४ मुझे आंकड़ों के प्रति उतना आकर्षण नही है, जितनी अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग होने की चेष्टा है। फिर भी अपनी सफलता-असफलता को मैं किसी पर थोपने की चेष्टा नही करूंगा।

४६५ कई लोग संसार को स्वर्ग बनाना चाहते हैं किन्तु वह बनता नहीं। मैं ऐसी कल्पना नहीं करता। यही कारण है कि मुझे निराशा नहीं होती। मैं चाहता हूं कि मनुष्यलोक कहीं राक्षसलोक या दैत्यलोक न बन जाए। उसे मनुष्यलोक की मर्यादा में रखने में हम सफल हो गये तो मानना चाहिए कि हमने बहुत कुछ कर लिया।

४६६ अणुव्रती बनने हेतु हृदय से व्रतों का पालन आवश्यक है, न कि मुझे नमस्कार करना।

४६७ धार्मिकों के बीच धर्म की बात कहना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। मुझे तो उन लोगों के बीच में भी धर्म की बात कहनी है, जिनको कि अधार्मिक बताया जाता है या जो तथाकथित धार्मिक है।

४६८ निराशा को मै जीवन की सबसे बड़ी पराजय मानता हू।

४६९ मैं किसी विवाद में उलझना नहीं चाहता और न प्रवाहपाती बनकर किसी मान्य परम्परा को नकारना ही चाहता हूं।

४७० मेरी तो यह प्रकृति हो गई है कि जिस बात का मैं स्वयं आचरण नहीं करता, उसका उपदेश भी बलपूर्वक नहीं कर सकता। अतः जिस वात को मै अच्छी मानूं तो पहले उसका प्रयोग मुझे अपनी आत्मा पर ही करना चाहिए। उसमें मैं यदि सफल होता हूं तो मुझे दूसरों को कहने का भी अधिकार है।

४७१ मैं अब अणुव्रत का पुनर्जन्म चाहता हूं। इसलिए मै अणुव्रत के प्रचार पक्ष को नहीं, रचनात्मक पक्ष को सवल देखना चाहता हूं।

४७२ मैं उन धार्मिकों से हैरान हूं जो वीसों वर्षों से धर्म की आराधना करते है किन्तु उनके जीवन में परिवर्तन नही आ रहा है।

४७३ मैं चाहता हूं कि एक शक्तिशाली अहिंसक सेना का निर्माण हो। वह सेना राजनीति के प्रभाव से सर्वथा अछूती रहे, यह आवश्यक है। मेरी दृष्टि में इस अहिंसक सेना मे पांच तत्त्व मुख्य होंगे—

१. समर्पण—अपने कर्त्तव्य के लिये जीवन की आहुति देनी पड़े तो भी तैयार रहें।
२. शक्ति—परस्पर एकता हो।
३. संगठन—संगठन में इतनी दृढ़ता हो कि एक ही आह्वान पर हजारों व्यक्ति तैयार हो जाएं।
४. सेवा—एक दूसरे के प्रति निरपेक्ष न रहें।
५. अनुशासन—परेड में सैनिकों की तरह चुस्त अनुशासन हो।

४७४ मैं किसी के मौखिक सहयोग से प्रसन्न नहीं हूं, मुझे सक्रिय सहयोग चाहिए।

४७५ अणुव्रत के माध्यम से मै तीन काम करना चाहता हूं—

१. जनसाधारण में नैतिक निष्ठा उत्पन्न करना।
२. धार्मिक के जीवन में व्याप्त धर्मस्थान और कर्मस्थान की विसंगति को दूर करना।
३. व्रत के द्वारा सामाजिक समस्याओं का समाधान करना।

४७६ लोगों की मान्यता है कि चोटी रखने से हिन्दू वन जाता है और दाढ़ी से मुसलमान। लेकिन मै चाहता हूं आप ये रखें या न रखें, किन्तु जीवन में चरित्र को अवश्य रखे। इससे आप इंसान वन जाएंगे, सच्चे मनुष्य वन जायेगे।

४७७ अगर मैं केवल धर्म शब्द से चिपटा हुआ हूं तो सही अर्थो मे धर्माचार्य कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

४७८ अस्पृश्यता-निवारण की दृष्टि से हमने दो काम किये—
 १. सवर्ण लोगों की अहं-भावना मिटाने का प्रयत्न।
 २. दलित वर्ग के लोगों की हीन भावना को दूर करने का प्रयत्न।

४७९ कांस्य का बर्तन स्नेह आदि से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार मोहाविल संसार मे रहता हुआ भी मैं निर्लिप्त रहने का प्रयत्न करता हूं।

४८० मेरे लिए समन्वय का द्वार सदा खुला है पर समन्वय के लिए सैद्धान्तिक कमजोरी लाने का द्वार सदा के लिए बंद है।

४८१ मैंने जो कुछ किया, कर रहा हूं या करूंगा वह सब पूर्वाचार्यो की कृपा का सुफल है।

४८२ संयम के शिखर तक आरोहण करना मेरा लक्ष्य है। मैं चाहता हूं, इस दिशा में कुछ विशेष प्रयोग करूं।

४८३ जिस दिन अणुअस्त्रों पर सम्पूर्ण प्रतिबंध लगेगा, क्रूर हिंसा रूपी राक्षसी को कील दिया जाएगा, वह दिन समूची मानव जाति के लिए महान् उपलब्धि का दिन होगा। यह मेरा व्यक्तिगत सपना है।

४८४ मैं शहरों की अपेक्षा गांवों को अधिक पसंद करता हूं क्योंकि शहरों की तरह ग्राम्य जीवन इतना व्यस्त और अशान्त नहीं होता।

४८५ मेरे जीवन का वह स्वर्णिम प्रभात होगा, जिस दिन वासना पर सम्पूर्ण विजय प्राप्त होगी और समता का साम्राज्य स्थापित हो जाएगा।

४८६ संयम, श्रम और सादगीपूर्ण जीवन हो—यही मेरा संदेश है।

४८७ मैं समाज का ध्यान तीन अपराधों की ओर आकर्षित करना चाहता हूं—
 १. राष्ट्रीय अपराध—मिलावट
 २. मानवीय अपराध—अस्पृश्यता
 ३. सामाजिक अपराध—दहेज-यातना, दहेज-हत्या।

४८८ कैसा होगा इक्कीसवीं सदी का जीवन ? इस सदर्भ में कुछ संभावनाएं मेरे मन में अंगड़ाई ले रही हैं तो कुछ नई आशंकाएं भी सिर उठा रही हैं। एक ओर सुविधाजीवी संस्कृति को पांव जमाने के लिए नई जमीन उपलब्ध कराई जा रही है तो दूसरी ओर पुरुषार्थजीवी संस्कृति को दफनाने के लिए नई कब्रगाह की व्यवस्था सोची जा रही है। कुछ नया करने और पाने की मीठी गुदगुदी के साथ कुछ न करने का दंश भी नई सदी को भोगना होगा।

४८९ मैं कवियों से अपनी अन्तर्व्यथा कहना चाहता हूं कि वे केवल नखशिख का वर्णन करे, यह पर्याप्त नहीं। वे केवल प्रकृति, पर्वत व समुद्र की शोभा का वर्णन करें, यह भी उचित नहीं। उनका कर्तव्य है कि सदाचार के प्रचार में अपनी कल्पना को स्फूर्तिमय बनाएं और मानवीय मनोवृत्ति को पवित्र करने में अपनी काव्यकला की वृद्धि करें।

४९० साहित्य-सृजन की प्रेरणा देने मे मुझे जितना आत्मतोष होता है, उतना ही आत्मतोष नया सृजन करते समय होता है।

४९१ मैं यही कहूंगा कि अगर कोई भगवान् मनुष्य को जातियों में बांटेगा, एक व्यक्ति को जन्म से ऊंचा तथा एक को जन्म से नीचा बनाएगा तो कम से कम मैं तो उसे भगवान् मानने को तैयार नहीं हूं।

४९२ मैं तो उसी धर्म का प्रचार-प्रसार करने में लगा हुआ हूं, जो त्रस्त, दु.खी व व्याकुल मानव जीवन को आत्मिक सुख-शांति व राहत की ओर मोड़नेवाला है। जो नारकीय धरातल पर पड़े जन-जीवन को सर्वोच्च स्वर्गीय धरातल की ओर आकृष्ट करने वाला है।

४९३ यावच्चेतोवृत्तिर्न भविष्यति मे वशंवदा भगवन् !
तावत् कथमहमस्मिन्, गच्छे सच्छासनं करिष्यामि ॥[1]

(जब तक मेरी चित्तवृत्ति मेरे वश मे नही होगी, तब तक मैं इस गण पर अच्छा अनुशासन कैसे कर पाऊंगा ?)

---

१. आचार्य पद पर अभिषिक्त होने पर आत्मचिन्तन हेतु बनाया हुआ पद्य।

४६४ मैंने अपने जीवन में कुछ सत्य पाए हैं, उन्हें मैं प्रयोग की कसौटी पर कसकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूं—

० मुझे पहला सत्य यह मिला कि विश्व केवल परिवर्तनशील या केवल स्थितिशील नहीं है। यह परिवर्तन और स्थिति का अविकल योग है।

० मुझे दूसरा सत्य यह मिला कि परिस्थिति-परिवर्तन व हृदय-परिवर्तन का योग किए बिना समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

० मुझे तीसरा सत्य यह मिला कि केवल सामाजिकता और केवल वैयक्तिकता को मान्यता देने से समस्याओं का समाधान नही हो सकता।

० चौथा सत्य यह मिला कि वर्तमान और भविष्य—दोनों में से एक ही उपेक्षणीय नहीं है।

० पांचवां सत्य यह अनुभव में आया कि भौतिकता मनुष्य को विभक्त करती है। उसकी एकता अध्यात्म के क्षेत्र में ही सुरक्षित है।

० छठा सत्य यह मिला कि कोई भी धर्मसंस्थान राजनीति और परिग्रह से निर्लिप्त रहकर ही अपना अस्तित्व कायम रख सकता है।

० अन्तिम सत्य है कि आध्यात्मिक एकता का विकास होने पर ही सह-अस्तित्व का सिद्धांत क्रियान्वित हो सकता है तथा जातिवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, प्रांतवाद और राष्ट्रवाद की सीमाएं निर्विकार हो सकती हैं।

परिशिष्ट

अ

आ

झ

ट

ठ

ड

त

थ

द

न

प

भ

म

य

व

श

ह

परिशिष्ट

प्रयुक्त पुस्तक सूची

[आचार्यश्री तुलसी के साहित्य को भाषा की दृष्टि से तीन भागो मे बाटा जा सकता है—(१) हिन्दी साहित्य, (२) राजस्थानी साहित्य और (३) संस्कृत साहित्य।

इस संग्रह को और अधिक समृद्ध बनाने के लिए आचार्यश्री के साहित्य के अतिरिक्त अन्य लेखकों की रचनाओ मे जहां भी आचार्यवर के वाक्यों का या प्रवचनों का उद्धरण है, उनमे से भी संकलन का कार्य किया गया है, जैसे आचार्यश्री तुलसी का यात्रा-साहित्य उनका जीवनी और सस्मरण-साहित्य आदि। उन पुस्तको की सूची भी अन्त मे दी गई है।

इसके अतिरिक्त 'चेतना का ऊर्ध्वारोहण', 'अमूर्त्त चिंतन', 'संबोधि', 'तेरापंथ का इतिहास', 'इतस्ततः', 'दस्तक शब्दो की' आदि शताधिक पुस्तको के आशीर्वचनो से तथा व्यक्तिगत रूप से दिए गए सैकडो, संदेशो एवं पत्रो से भी सूक्ति-संकलन किया गया है।

संघीय पत्र-पत्रिकाओ मे दिए गए सामयिक लेखों, संदेशो, सम्मेलन-संदेशो से भी सुभाषित संकलित है, जो इस संग्रह मे समाविष्ट हैं।

इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स आदि राष्ट्रीय पत्रो एवं राजस्थान पत्रिका, नई दुनिया, अमर उजाला आदि सैकड़ो प्रादेशिक समाचार-पत्रो में आए लेखों एवं समाचार-बुलेटिनों का उपयोग भी इस संकलन में किया गया है।

पुस्तक-सूची की पाद-टिप्पणी में द्वितीय आवृत्ति मे पुस्तक के परिवर्तित नाम का उल्लेख भी कर दिया गया है।]

हिंदी साहित्य

१. अग्नि परीक्षा (काव्य) (आदर्श साहित्य सघ, द्वितीय सं, सन् १९७२)
२. अणुव्रत आन्दोलन (अणुव्रत समिति, दिल्ली)
३. अणुव्रत आन्दोलन : एक दृष्टि (वही, बम्बई)
४. अणुव्रत आन्दोलन का प्रवेश द्वार (आदर्श साहित्य संघ, अप्रल १९५१)
५. अणुव्रत के आलोक में (वही, द्वितीय सं, सन् १९८६)
६ अणुव्रत के संदर्भ में (वही, प्रथम सं, सन् १९७१)

५४. धर्म सब कुछ है, कुछ भी नहीं[1] (श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता)
५५. धर्म सहिष्णुता (गुजरात राज्य अणुव्रत समिति, अहमदाबाद)
५६. धवल समारोह[2] (आचार्य तुलसी धवल समारोह समिति, दिल्ली)
५७. नया मोड़ (श्री गुलाबचन्द धनराज, कलकत्ता)
५८. नयी पीढी : नए संकेत (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, प्रथम सं., १६७६)
५९. नव निर्माण की पुकार[3] (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १६५७)
६०. नैतिकता के नए चरण (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, दिल्ली)
६१. नैतिक संजीवन, भाग १ (आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली)
६२ पथ और पाथेय[4] (अजंता प्रिंटर्स, जयपुर)
६३. पानी मे मीन पियासी[5] (काव्य) (आदर्श साहित्य सघ प्रथम सं., १६८०)
६४. प्रगति की पगडंडियां (अणुव्रत समिति, कलकत्ता)
६५. प्रज्ञापुरुष जयाचार्य (जैन विश्व भारती प्रथम स., १६८१)
६६. प्रवचन डायरी[6], भाग १ से ३ (श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता)
६७. प्रवचन पाथेय, भाग १ से १० (जैन विश्व भारती लाडनूं)
६८. प्रेक्षा : अनुप्रेक्षा (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं, १६८३)
६९. प्रेक्षाध्यान : प्राणविज्ञान (जैन विश्व भारती, लाडनूं द्वितीय सं., १६८५)
७०. बीती ताहि विसारि दे (आदर्श साहित्य सघ, द्वितीय सं., १६८६)
७१. बुराइयों की जड़ : मद्यपान (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
७२. बूंद बूंद से घट भरे, भाग १ (जैन विश्व भारती, लाडनूं प्रथम सं., १६८५)
७३ बूंद बूंद से घट भरे,[7] भाग २ (वही)
७४. बूंद भी लहर भी (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १६८६)
७५ भगवान् महावीर (जैन विश्व भारती, लाडनूं, १६७४)
७६. भरतमुक्ति (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १६८०)

---

१. सन् १६५० के दिल्ली सर्वधर्मसम्मेलन के अवसर पर प्रदत्त भाषण ।
२. धवल समारोह पर आचार्यश्री तुलसी द्वारा प्रदत्त प्रवचन ।
३. इस पुस्तक मे केवल प्रवचन ही नही साथ-साथ प्रतिदिन की यात्रा एवं कार्यक्रमो का वर्णन भी है ।
४. मुनि श्रीचद 'कमल' द्वारा संकलित लघुसूक्ति संकलन ।
५. इस पुस्तक की प्रथम आवृत्ति 'आषाढ़भूति' के नाम से छपी हुई है ।
६. सन् १६५३ से १६५७ तक के प्रवचनो का संकलन ।
७. ये दोनो पुस्तकें 'प्रवचन पाथेय', भाग-१ और २ के नाम से प्रसिद्ध है ।

७७. **भावात्मक एकता**[1] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
७८. **भ्रष्टाचार की आधारशिलाएं** (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, दिल्ली)
७९. **मगल संदेश**[2] (अणुव्रत स्वागत समिति, बीदासर)
८०. **मंजिल की ओर,**[3] **भाग १** (जैन विश्व भारती, लाडनू, प्रथम स., १९८६)
८१. **मंजिल की ओर,**[4] **भाग २** (वही, प्रथम सं., १९८८)
८२. **महामनस्वी आचार्यश्री कालूगणी जीवनवृत्त** (श्री कालूगणी जन्म शताब्दी समारोह समिति, छापर, प्रथम स., १९७७)
८३. **मुक्ति इसी क्षण में** (अखिल भारतीय तेरापथ युवक परिषद् लाडनू, प्रथम सं. १९७८)
८४. **मुक्तिपथ**[5] (आदर्श साहित्य सघ, प्रथम स., १९७८)
८५ **मुखड़ा क्या देखे दर्पण में** (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स., १९८९)
८६. **मेरा धर्म : केन्द्र और परिधि** (वही, प्रथम स., १९६७)
८७. **युग की चुनौती और अहिंसा की शक्ति** (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
८८. **युवा शक्ति से अपेक्षा** (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनूं)
८९. **राजधानी में आचार्य श्री तुलसी के संदेश** (मारवाडी प्रकाशन, दिल्ली)
९०. **राजपथ की खोज**[6] (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स., १९८७)
९१. **विचार दीर्घा** (वही, प्रथम स., १९८०)
९२. **विचार बोध**[7] **(काव्य)** (वही, द्वितीय सं., १९८९)
९३. **विचार वीथी** (वही)
९४. **विश्व शांति और उसका मार्ग**[8] (श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा, कलकत्ता)
९५. **व्यवसाय जगत् की बीमारी मिलावट**[9] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)

---

१. अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित परिपत्र ।
२. अणुव्रत के सतरहवें अधिवेशन पर पठित भाषण ।
३. यह पुस्तक 'प्रवचन पाथेय', भाग-३ के नाम से प्रसिद्ध है ।
४. यह पुस्तक 'प्रवचन पाथेय', भाग-७ के नाम से प्रसिद्ध है ।
५. यह पुस्तक द्वितीय आवृत्ति में 'गृहस्थ को भी अधिकार है धर्म करने का' नाम से छपी है ।
६. यह पुस्तक प्रथम आवृत्ति मे 'विचार दीर्घा' और 'विचार वीथी' के नाम से प्रकाशित है ।
७. अमृत कलश, भाग-२ के अन्तर्गत प्रकाशित ।
८. शाति-निकेतन मे होने वाले विश्वशांति सम्मेलन के अवसर पर प्रदत्त भाषण ।
९. अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित ।

९६. व्रत-दीक्षा (वही)
९७. शांति के पथ पर (दूसरी मंजिल) (आदर्श साहित्य संघ, वि. सं., २०११)
९८. शिक्षा के संदर्भ में अणुव्रत[1] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
९९ श्रावक-आत्मचिंतन (जुहारमल उत्तमचंद बरड़िया, सरदारशहर)
१०० श्रावक जन्म से या कर्म से ? (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्)
१०१. श्रावक प्रतिक्रमण (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं, १९७६)
१०२. संदेश (आदर्श साहित्य संघ, सरदारशहर)
१०३. सप्त व्यसन (वही)
१०४. सफर आधी शताब्दी का (आदर्श साहित्य संघ)
१०५. समणदीक्षा (पारमार्थिक शिक्षण संस्था, लाडनूं)
१०६. समता की आंख : चरित्र की पांख[2] (वही, प्रथम सं., १९९१)
१०७. समाधान की ओर (अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, लाडनूं)
१०८. सर्वधर्म सद्भाव[3] (अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)
१०९. साधना (काव्य) (जैन श्वेताम्बर तेरापंथ युवक परिषद्, जयपुर)
११०. साधु जीवन की उपयोगिता (जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता)
१११. सीपी सूक्त[4] (चुन्नीलाल भीमलाल, बोथरा)
११२. सोचो ! समझो[5] !, भाग-१ (जैन विश्व भारती, द्वितीय संस्करण)
११३. सोचो ! समझो[6] !, भाग २-३ (वही)
११४. हस्ताक्षर[7] (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८७)

राजस्थानी साहित्य—

११५. अतिमुक्तक व्याख्यान (अप्रकाशित)
११६. कालू उपदेश वाटिका[8] (आत्माराम एण्ड संस, प्रथम सं., १९८६)
११७. कालूयशोविलास (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १९८४)
११८. चंदन की चुटकी भली (वही, द्वितीय संस्करण)
११९. चंदनबाला व्याख्यान (अप्रकाशित)
१२०. जागरण (अखिल भारतीय अणुव्रत समिति, प्रथम सं., १९५९)

---

१ अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित परिपत्र।
२. प्रथम आवृत्ति मे यह पुस्तक 'उद्‌बोधन' के नाम से प्रकाशित है।
३. अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित परिपत्र।
४. आचार्य श्री तुलसी का लघु सूक्ति-संकलन।
५-६. द्वितीय आवृत्ति में ये तीनो भाग 'प्रवचन पाथेय', भाग-४-५ और ६ के नाम से छपे हैं।
७ आचार्य श्री द्वारा लिखे गए प्रतिदिन के संक्षिप्त विचारो का संकलन।
८ द्वितीय आवृत्ति मे यह पुस्तक 'सोमरस' के नाम से छपी है।

१२१. डालिम चरित्र (आदर्श साहित्य सघ, प्रथम स., १९७५)
१२२. थावच्चापुत्र व्याख्यान (अप्रकाशित)
१२३. नंदन निकुंज (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय स , १९८२)
१२४. भाईजी महाराज का व्याख्यान (अप्रकाशित)
१२५. मगन चरित्र (वही, द्वितीय सं., १९८५)
१२६. मां वदना (वही, प्रथम सं., १९८१)
१२७. माणक-महिमा (वही, द्वितीय स , १९८५)
१२८. योगक्षेम वर्ष व्याख्यान (अप्रकाशित)
१२९. शासन संगीत (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स., १९७५)
१३०. शैक्ष-शिक्षा (अप्रकाशित)
१३१. श्रद्धेय के प्रति (आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली)
१३२. सोमरस (आदर्श साहित्य संघ, द्वितीय सं., १९८३)

संस्कृत साहित्य

१३३ कर्त्तव्यषट्त्रिंशिका (आदर्श साहित्य सघ, प्रथम स., १९५१)
१३४. जैन सिद्धांत दीपिका (वही, तृतीय सं , १९८२)
१३५. पञ्चसूत्रम् (वही, द्वितीय स., १९७६)
१३६. भिक्षु न्याय कर्णिका (वही प्रथम सं., १९७०)
१३७. मनोनुशासनम् (वही, चतुर्थ संस्करण, १९८६)
१३८. शिक्षाषण्णवति (आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स , १९५१)

अन्य साहित्य

१. अमरित बरसा अरावली में—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८९ ।)
२. आचार्य श्री तुलसी : जीवन पर एक दृष्टि—(ले० मुनि नथमल, प्र० वही, सरदारशहर)
३. आचार्यश्री तुलसी : जैसा मैंने समझा—(ले० सीताशरण शर्मा, प्र० दक्षिण प्रादेशिक अणुव्रत समिति, बेंगलूर, प्रथम सं., १९६९)
४. जन-जन के बीच भाग १—(ले० मुनि सुखलाल, प्र० अणुव्रत समिति, प्रथम स., १९५८)
५. जन-जन के बीच भाग २—(ले० मुनि सुखलाल, प्र० मेघराज संचियालाल नाहटा, प्रथम सं., वि. सं. २०२१ ।)
६. जनपद-विहार—(आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, प्रथम सं., सन् १९५१)
७. जब महक उठी मरुधर माटी—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं., १९८४)

८. जोगी तो रमता भला—(ले० मुनि सुखलाल, प्र० आदर्श साहित्य संघ प्रथम सं., १९८८)
९. तेरापंथ दिग्दर्शन¹—(संपा. मुनि सुमेरमल, प्र० जैन विश्व भारती, लाडनूं)
१०. दक्षिण के अंचल में—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं०)
११. धर्मचक्र का प्रवर्त्तन—(ले० युवाचार्य महाप्रज्ञ, प्र० अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति, प्रथम सं०, १९८६)
१२. परमार्थ—(सं. मुमुक्षु शान्ता, प्र० पारमार्थिक शिक्षण संस्था, लाडनूं)
१३. परस पांव मुसकाई घाटी—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य संघ)
१४. पांव-पांव चलने वाला सूरज—(वही, प्रथम स., १९८२)
१५. प्रश्न और समाधान² (सं० मुनि सुखलाल, प्र० आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली)
१६. बढ़ते चरण—(ले० मुनि श्रीचंद 'कमल', प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम स, १९७३)
१७. बहता पानी निरमला—(ले० साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं १९८४)
१८ बोलते चित्र—(ले० मुनि गुलाबचन्द, प्र० अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद्, प्रथम स १९८०)
१९. रश्मियां—(ले० मुनि श्रीचंद 'कमल', प्र० आदर्श साहित्य संघ, प्रथम सं १९८२)
२०. संस्मरणों का वातायन (ले० साध्वी कल्पलताजी, प्र० आदर्श साहित्य संघ)

पत्र-पत्रिकाएं एवं अभिनन्दन ग्रन्थ

१. अणुविभा³—(अणुव्रत विश्वभारती, राजसमंद, १९८९)
२. अणुव्रत—(पाक्षिक पत्र सन् १९५५ से १९९० तक के)
३. अमृत महोत्सव¹—(सं० महेन्द्र कर्णावट, प्र० अमृत महोत्सव राष्ट्रीय समिति)

---

१ यह पुस्तक चार भागो मे प्रकाशित है। इनमे सन् १९८४-८७—इन चार वर्षों का वार्षिक विवरण है।

२. इस पुस्तक में मुनि सुखलालजी के प्रश्न एवं आचार्यश्री तुलसी के उत्तर संकलित है।

३. अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं अहिंसक उपक्रम की पत्रिका।

४. आचार्य तुलसी अभिनंदन ग्रंथ—(श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, प्रथम सं., १९६२)
५. आचार्य भिक्षु अभिनंदन ग्रंथ—(वही, प्रथम सं, २०१८)
६. जनपथ—(सपा० देवेन्द्र कुमार कर्णावट)
७. जैन भारती—(मासिक पत्रिका, सन् १९४७ से १९९१ तक की, संपा० श्रीचंद रामपुरिया)
८. तुलसी प्रज्ञा (शोध त्रैमासिकी, जैन विश्व भारती, लाडनूं)
९. पाक्षिक विज्ञप्ति—(सं० पन्नालाल भंसाली, आदर्श साहित्य संघ)
१०. प्रेक्षाध्यान (मासिक पत्रिका, तुलसी अध्यात्म नीडम्, लाडनूं)
११. युवादृष्टि—(मासिक पत्रिका, संपा० कमलेश चतुर्वेदी, सन् १९७२ से १९९०)
१२. विज्ञप्ति—(क्रमांक १ से १०६४ तक, संपा० कमलेश चतुर्वेदी)
१३. विवरण पत्रिकाएं